All Subject to Patiala Jurisdiction.

साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र

खेती संदेश

मूल्य : 6/- रुपए

Postage Registered No. PB/PTA/0339/2025-2027

WEEKLY KHETI SANDESH

E-mail : khetisandesh2025@gmail.com

Chief Editor : Parminder Kaur • RNI Regd. No. PBBIL/25/A0210 • Issue Dt. 08-12-2025 • Vol.1 No.16 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • Mob. 90410-14575 • Page 12

अब गेहूं के फसल अवशेष जलाने पर होगी सख्ती, केंद्र ने हरियाणा से एक्शन प्लान तलब किया

हरियाणा में आने वाले रबी सीजन में गेहूं के फसल अवशेष यानी भूसे के अवशेष जलाने पर अब पराली के समान सख्ती लागू होगी। वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (AQM) ने हरियाणा सरकार से गेहूं अवशेष जलाने को नियंत्रित करने की विस्तृत कार्ययोजना मांगी है। आयोग ने मुख्य सचिव से कहा है कि निगरानी तंत्र को मजबूत करते हुए, दोषियों पर कार्रवाई और किसानों के बीच जागरूकता अभियान को प्राथमिकता के साथ तैयार किया जाए। सरकार को यह एक्शन प्लान शीघ्र आयोग को सौंपना होगा।

हरियाणा में लंबे समय से धान की पराली जलाना बड़ी समस्या रही है, जिसके खिलाफ नियम, जुर्माना और निगरानी व्यवस्था सक्रिय रूप से लागू की जाती रही है। लेकिन इसी पैटर्न पर गेहूं के अवशेष जलाने की समस्या कम गंभीरता से ली जाती रही। अब पहली बार केंद्र स्तर पर गेहूं अवशेष जलाने को विशेष तौर पर नियंत्रित करने का रुख अपनाया गया है। वैज्ञानिक संस्थानों के अनुसार गेहूं के अवशेष जलने से भी खतरनाक गैसें और पी.एम. 2.5 तथा पी. एम. 10 जैसे सूक्ष्म कण निकलते हैं। इनमें कार्बन मोनोऑक्साइड, बेंजीन, मीथेन और नाइट्रोजन ऑक्साइड शामिल हैं। विशेषज्ञ बताते हैं कि यह हवा को प्रदूषित करने के साथ ही मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित करते हैं और सूक्ष्म जीवों का नाश कर देते हैं।

मुख्य सचिव अनुराग रस्तोगी ने कहा कि हरियाणा ने धान की पराली को रोकने में इस वर्ष उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है और पिछले वर्ष के मुकाबले घटनाओं में गिरावट दर्ज की गई है। उन्होंने कहा कि गेहूं अवशेष जलाने पर पहले से कार्रवाई का प्रावधान है, अब इसे और कठोर बनाया जाएगा। अधिकारियों के अनुसार इस बार गांव स्तर पर निगरानी, डंडा तंत्र, त्वरित कार्रवाई और पंचायत स्तर पर रिपोर्टिंग की व्यवस्था लागू करने पर जोर दिया जाएगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के सैटेलाइट आधारित आंकड़ों के अनुसार, 1 अप्रैल से 31 मई इस वर्ष तक हरियाणा में गेहूं अवशेष जलाने की 1832 घटनाएं दर्ज हुईं। यह संख्या पिछले चार वर्षों में सबसे कम है। वर्ष 2022 में 2887, 2023 में 1903 और 2024 में 3159 मामले सामने आए थे। इस साल जिला स्तर पर फतेहाबाद में 220, सोनीपत में 219, कैथल में 178, जींद में 176 और करनाल में 164 मामले दर्ज हुए। वहीं दूसरी ओर मध्य प्रदेश में 34,429, उत्तर प्रदेश में 14,398, पंजाब में 10,207 और दिल्ली में 49 मामले दर्ज किए गए। प्रदूषण के संदर्भ में हरियाणा की वायु स्थिति वर्षभर औसतन खराब रही। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार राज्य में पीएम 2.5 का वार्षिक औसत स्तर 63 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर रहा, जो राष्ट्रीय मानक 40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर से कहीं अधिक है। केवल भारी बारिश वाले दिनों में ही यह स्तर मानक से नीचे दर्ज किया गया। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि गेहूं अवशेष जलाने को नियंत्रित किया गया, तो गर्मी व वर्षा पूर्व महीनों में वायु प्रदूषण के स्तर में गिरावट लाने में मदद मिल सकती है।

देश में दलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए 'दलहन आत्मनिर्भरता मिशन' की शुरुआत

भारत सरकार ने दलहन पर आयात निर्भरता कम करने और देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अक्तूबर 2025 में एक महत्वपूर्ण केंद्रीय प्रायोजित योजना 'दलहन आत्मनिर्भरता मिशन' की शुरुआत की है। यह मिशन छह वर्ष की अवधि (2025-26 से 2030-31) के लिए 11,440 करोड़ रुपये के वित्तीय परिव्यय के साथ क्रियान्वित किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य घरेलू स्तर पर दलहन उत्पादन को तेज गति से बढ़ाना है, विशेषकर तुअर, उड़द और मसूर पर फोकस रखते हुए। मिशन के अंतर्गत जलवायु-अनुकूल और उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के उत्पादन और उपलब्धता को सुदृढ़ किया जाएगा, साथ ही दलहन खेती के क्षेत्र का विस्तार भी किया जाएगा। फसल कटाई के बाद भंडारण और प्रबंधन तकनीकों को बढ़ावा देने पर भी विशेष ध्यान दिया गया है, जिससे कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम किया जा सके। मिशन प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान (पीएम-आशा) के मूल्य समर्थन योजना (पीएसएस) के अनुसार अगले चार वर्षों तक नेफेड और एनसीसीएफ द्वारा तुअर, उड़द और मसूर की सुनिश्चित खरीद को भी समर्थन देगा, जिससे किसानों को लाभकारी मूल्य और आय सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

योजना में कम उपयोग वाली भूमि और ऐसी फसल प्रणालियों में दलहन का क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर विस्तार शामिल है, जहां प्रतिस्पर्धी फसलों की संभावनाएं सीमित हों। इसके माध्यम से भूमि उपयोग क्षमता बढ़ेगी, सतत फसल चक्र को बढ़ावा मिलेगा और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होगा। सरकार ने वर्ष 2030-31 तक कुल दलहन उत्पादन को 350 लाख टन तक पहुंचाने का लक्ष्य निर्धारित किया है, जिससे देश दलहन के क्षेत्र में पूर्ण आत्मनिर्भरता हासिल कर सके। इसके साथ ही, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग कृषि विस्तार उप-मिशन (एस.एम.ए.ई.) भी लागू कर रहा है, जो जिला स्तर पर कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी (ए.टी.एम.ए.) के माध्यम से तकनीक-आधारित और किसान-केंद्रित विस्तार प्रणाली को मजबूत करता है। इसका उद्देश्य किसानों को प्रशिक्षण और नवीन कृषि तकनीकों की जानकारी समय पर उपलब्ध कराना है, जिससे दलहन उत्पादन एवं कृषि उत्पादकता दोनों में वृद्धि हो सके।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें

खेती संदेश

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर

एक वर्ष में 52 अंक

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 400/- रुपए | दो वर्ष 700/- रुपए

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :

90410-14575

KHETI DUNIYAN
TID - 62763351

चंदे भेजने हेतु QR कोड सकैन करें।

खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला

पानी (जल) का महत्व एवं समस्याएं

बलविंदर बालम,
ओंकार नगर, गुरदासपुर
मो. 98156—25409

बढ़ती जन संख्या तथा विभिन्न पहलुयों द्वारा इस का दुरउपयोग पानी का स्तर कम कर रहा है। पानी का प्रयोग जीवन में प्रत्येक तत्वों पर किया जाता है। घरेलू रसोई से लेकर बाहरी कार्यों में भी पानी की एक विशेष महत्ता है। पानी मानव की जिंदगी के अंतिम सांसों तक साथ देता है और पानी एक सच्चा मित्र है। पानी ही भगवान का दूसरा रूप है। इसीलिए पानी की पूजा होती है। विज्ञान से लेकर धार्मिक, घरेलू, समाजिक, व्यवहारिक कार्यों-समागमों में पानी की विशेष अहमियत युग-युगांत्र से चलती आ रही है। कृषि, काएनात तथा मानव की खूबसूरती के लिए पानी की मुख्य भूमिका है।

जल संसाधन के नियोजक, विकास तथा प्रबंधन को राष्ट्रीय स्तर पर संचालित करने के लिए तुरंत जरूरत को देखते हुए सन् 1986 में अब तक कई बार विभिन्न जल विशेष विज्ञानियों की निगरानी में जल नीति की रूप रेखा तैयार की गई। देश की प्रथम जलनीति 1986 में तथा दूसरी सन् 2002 में लागू की गई। परंतु इन जल नीतियों के बावजूद कई खामियों के कारण जल स्तर में गिरावट का सिलसिला जारी रहा। नदी नाले सूखने के कारण, जल प्रदूषण बढ़ने के कारण, पहाड़ी नदियों में गंदला बहन रोड़ होने के कारण जल प्रदूषण बढ़ने लग पड़ा। भारत की प्रसिद्ध नदियों में गंदगी फेंकने के कारण, अस्थियां

प्रवाह के कारण, धार्मिक रीति रिवाजों के कारण, ग्रामीण-शहरी कूड़ा कर्कट फेंकने के कारण आदि पानी में गंदगी तथा गार फैलनी शुरू हो गई। इसी वजह के कारण समय की मांग को रखते हुए जल नीति की जरूरत महसूस की गई तांकि नदियों-नाले के जल में गंदलेपन को रोकने के लिए ज्यादा से ज्यादा जल संयोजन किया जा सके। सन् 2012 में भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय ने एक और नई जलनीति तैयार की, जिसको जल-नीति 2012 का नाम दिया गया।

राष्ट्रीय जलनीति के अनुसार जल संसाधन, नियोजन, विकास तथा प्रबंधन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से संचालित किए जाने की जरूरत है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर सूचना प्रणाली स्थापित की जाए। केन्द्र तथा राज्य स्तर की एजेंसियां शक्तिशाली एक नेटवर्क की भूमिका निभाएं। उपयोग जल संसाधनों को और ज्यादा ऊपर उठाने के लिए एक नदी को दूसरी नदी से जोड़ा जाए। समुंद्र जल के खारे पानी को दूर करने के लिए विधियों के साथ-साथ बारिश के पानी के समूचे ढंग से शुद्ध पानी के योग बनाया जाए। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर खोज तथा विकास को और उत्साहित करने की जरूरत है। हाईड्रोलाजीकल ईकाई के लिए जल संसाधन विकास तथा प्रबंधन की योजना तहित नदियों घाटियों के संगठनों को स्थापित किया जाना चाहिए। जिस जगह पर पानी की कमी है उस क्षेत्र को नदी-नालों से जोड़ा जाए। जल वितरण प्राथमिकता सबसे पहले पीने वाले पानी से, फिर सिंचाई, इस के बाद पन बिजली, कृषि तथा गैर-कृषि उद्योगों आदि को क्रम में करना चाहिए। पानी की दुरूउपयोगिता को रोका जाए। पूर्नस्थापित तथा पुर्नवास पर योजना बद्ध ढंग से काम किया जाए तां कि इस का लाभ प्रभावित लोगों को भी मिल सके।

स्तर वाले पानी और धरती निम्न पानी की गुणवंता पर निगरानी रखी जाए। आविसकृत पानी को प्राकृतिक पानी में मिलाने की कोशिश की जाए। पानी के स्तर के लिए इस के बचाव के लिए प्रचार, प्रासार, शिक्षा, दंड तथा मान सामान के जरिए जल बचाओ चेतना को उत्साहित करना चाहिए।

घरेलू रसोई से लेकर बाहरी कार्यों में भी पानी की एक विशेष महत्ता है। पानी मानव की जिंदगी के अंतिम सांसों तक साथ देता है और पानी एक सच्चा मित्र है। पानी ही भगवान का दूसरा रूप है। इसीलिए पानी की पूजा होती है। विज्ञान से लेकर धार्मिक, घरेलू, समाजिक, व्यवहारिक कार्यों—समागमों में पानी की विशेष अहमियत युग—युगांत्र से चलती आ रही है। कृषि, काएनात तथा मानव की खूबसूरती के लिए पानी की मुख्य भूमिका है।

बांटलिंग प्लांटस की ज्यादा खप्त करके भी बहुत सारा (लाखोंटन) पानी फजूल ही जाता है। हिमाचल प्रदेश में पानी को खेती कृषि आदि के लिए प्रयोग में लाया जाता है। धरती के नीचे गिरते पानी को बचाने के लिए सरकारों को और कई उपराले सुघढ़ता से करने चाहिए। वर्षा के पानी का संगृह करके उचित प्रयोग में लाना भी एक बढ़िया ढंग है। पानी की शुद्धिकरण के लिए कई तरह के परम्परागत तथा आधुनिक प्रयोग सार्थक सिद्ध हो सकते है।

भारत सेम (सिल्ली) वाले क्षेत्र गंदले दरियाई क्षेत्र, कल्लरी क्षेत्र, गंदले नालों वाले क्षेत्र में लाखों लोग बीमारियों का शिकार हो रहा है क्योंकि उन पिछड़े क्षेत्र में साफ-स्वच्छ पानी की बहुत कमी है। विशेष कर के पंजाब में ही शुद्ध पानी न मिलने के कारण हजारों लोग कैंसर, गुर्दे के रोग, पेट की बीमारियाँ आदि के शिकार हो रहे है। अनेकानेक लोग मौत के मुँह में जा चुके है। सरकार की ओर से अस्पताल तो खोले रहे है परन्तु, शुद्ध पानी की व्यवस्था नहीं की जा रही। सरकार की और से शुद्ध पानी का अबी तक मुकम्ल, सही योजना वद्ध, आविष्कार पूर्वक ढंग से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। अस्पतालों की जगह पर लोगों के शुद्ध पानी मिले। शुद्धी करण वाली पानी की टैकियों का प्रबंध प्रत्येक गांव में हो। कुछ नहीं तो पानी फिल्टर करने वाले उपकरण सस्ते रेटों में घर-घर मुहैया करवाए जाएं।

भौतिक माप के अनुसार पीने वाले साफ पानी शीतल, गंध रहित होना चाहिए। नैतिक माप के अनुसार शुद्ध पानी में काई गंदला तत्व नहीं होना चाहिए। अशुद्ध पानी में कैलिसम, सलफेट, लोहा मैगजीन, तांबा, जिंक, शीश, पाश तथा अन्य रासायणिक पदार्थ आदि पाए जाते है। अगर कोई रोग फैलता है तो उस के रोगाणु, पानी में धुल कर कई बीमारियों को जन्म देते है।

कुएं, तालाबों, नालों, बौलियों आदि ठहरे किस्म के पानी गंदले होने के कारण साफ-स्वच्छ पानी को प्रदूषित कर देते हैं। भविष्य को भयंकर भौतिक बीमारियों का शिकार होना पड़ेगा तथा होना पड़ रहा है। भारत सरकार तथा राज्य सरकारें कई शुद्ध जल योजनाएं चला रही है, परन्तु बड़े स्तर खर्च आने की वजह से अधुरी है। भारत जलवायु की दृष्टि से मानसूई प्रदेश होने के कारण वर्ष के तीन या चार माह ही वर्षा होती है। शेष माह वर्षा न होने के कारण बहुत सारे भागों में धरातलीय जल की कमी रहती है।

उत्तर के तटी मैदानों में भूमिगत पानी के विशाल भंडार पाए जाते है देश के दूसरे मांगों में पानी की बहुत कमी पाई जाती है। अभी तक देश के प्रत्येक गांव में सुरक्षित पीने वाले पानी की व्यवथ्या नहीं हो पाई है। देश में आज भी पानी लेने के लिए लोगों को दूर दराज पैदल चल कर पानी लाना पड़ता है। संपूर्ण जल संसाधन को अध्ययनों में अनेक दृष्टिकोणों, जैसे नदी नाले, निकास, प्रणाली, बाढ़-सूखा की समस्या, सिंचाई परियोजना आदि की सखध्त जरूरत है।

धरती ऊपर जल निकास का बहुत महत्व है ऊंचे भागों से निम्न भागों को जाते पानी का अच्छा प्रबंध। कृषि, व्यापार, धार्मिक पुजा तथा क्षेत्रीय प्रबंधन तथा नियोजन में नदियों की भरपुर उपयोगिता है। भारतीय जल निकास प्रणाली के कई प्रयास क्रियारत है।

पंजाब, हरियाणा तथा उतर प्रदेश के भागों में समतल भूमि होने के कारण विकास कार्य नदियां सड़के, पुल, रेल तथा नहर मार्ग के कारण फालतू पानी का निकास पूरी तरह नहीं हो सका।

भारत सरकार ने 1954 में बाढ़ पर नियंत्रण पाने के लिए राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की थी, जिस में दरिआई किनारे पक्के करना, दरिआई मार्गो को बांटना, ऊँचे चबूतरे बनाना, पौधे लगाना, बाढ़ वाले क्षेत्रों का निर्धारिण, बाढ़ सुरक्षा तथा भविष्यवाणी के संकेत देना तथा ढलानों के ऊपर बांध आदि प्रमुख थे।

देखा जाए तो खासकर के एशियन देशों में ही पानी की ज्यादा समस्याएं है। खास कर के भारत में गंदले पानी का प्रदूषण अनवरत बढ़ता जा रहा है। उस की वजह यह है कि कोई भी ठोस कठोर कानून व्यवस्था नहीं है। प्रायः लोग गांवों, शहरों की गलियां, दुकानों आदि का कूढ़ा कर्कट नदी नालों में ही फैंक देते है, जो नदी को गंदला करता है। भारतीय लोगों पर अवसर पर तुरंत फैसला लेने वाला कानून लागू नहीं होता।

पानी की शुद्धता तथा निकास को सही रूप देने के लिए संतों, महापुरूषों, धार्मिक प्रचारकों को इधर ध्यान देना चाहिए। पानी की शुद्धता को बचाने के लिए बड़े-बड़े धार्मिक अदारों को आगे आना चाहिए क्योंकि ये बढ़िया भूमिका निभा सकते है, क्योंकि उनके पास पैसा (धन) भी है तथा मानव शक्ति की है। धर्माचार्य अपने प्रवचनों के माध्यम से पानी की शुद्धता कम हो रही स्तर की ओर जनता ध्यान आकर्षित करें। स्कूलों- कालिजों में रोज एक पीरिअड होना चाहिए, तब जा कर यह योजना सार्थिक ढंग से क्रियान्वित हो सकती है।

सरकारों को चाहिए कि पानी के निकास के लिए (Bore & Well) निकास कूएं लगवाएं, टी.टी.एस. (T.T.S.) मीटर का प्रयोग घर-घर मे हो। विकसित देशों ने लघु निकासी कुएं के जरिए बेकार पानी, बारिश के पानी तथा बाढ़ के पानी पर नियंत्रण कर रख है। विकसित देशों की सड़को के किनारे किनारे जरूरत के अनुसार लघु निकासी कुएं बनवाएं हुए है। बारिश आदि का पानी इन बोरों कुओं के जरिए भूमि के नीचे चला जाना है। परन्तु यह बहुत महंगा खर्च है जिस के कारण सरकारें इधर ध्यान नहीं देती जब कि भविष्य में इन की सख्त जरूरत है।

भारत सरकार ने 1974 में कानूत पारित किया था कि गंदा पानी नदी-नालों में न फैंका जाए परन्तु इस कानून की कौन परवाह करता है? आज भारत के शहर-शहर, गांव-गांव में पानी के निकास, शुद्ध पानी के प्रबंध तथा पानी के कम होते स्तर को बचाने की अत्यंत आवश्यकता है।

जरूरी है विनाशकारी खरपतवार गाजर घास की रोकथाम

टोडरमल, पारस, मीनाक्षी सांगवान, सुरेश व वीरेन्द्र सिंह हुड्डा,
सस्य विज्ञान विभाग, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अवांछित पौधे जो बिना बोये ही उग जाते हैं और लाभ की तुलना में ज्यादा हानिकारक होते हैं, वो खरपतवार होते हैं। खरपतवार प्राचीन काल से ही मनुष्य के लिए समस्या बने हुए हैं, खेतों में उगने पर यह फसल की पैदावार व गुणवत्ता पर विपरीत असर डालते हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी खरपतवार बहुत बुरा असर डालते हैं और कई खरपतवारों की वजह से (जैसे गाजर घास) मनुष्य को कई घातक बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

गाजर घास क्या है?

गाजर के पौधे के समान दिखने वाली वनस्पति गाजर घास एक ऊष्णकटिबंधीय अमेरिकी मूल का शाकीय पौधा है, जो आज देश के समस्त क्षेत्रों में मानव, पशु, पर्यावरण और जैव-विविधता हेतु एक गंभीर समस्या बनता जा रहा है। चूंकि पौधे की पत्तियां गाजर की पत्तियों के समान होती हैं, इसलिए इसे गाजर घास के नाम से जाना जाता है।

गाजर घास बहुत ही खतरनाक खरपतवार है। गाजर घास की 20 प्रजातियां पूरे विश्व में पाई जाती हैं। इसका वैज्ञानिक नाम पारथेनियम हिस्ट्रोफोरस (Parthenium hysterophorus) है, इसको कई अन्य नामों से भी जाना जाता है, जैसे कांग्रेस घास, सफेद टोपी, छंतक चांदनी आदि।

यह खरपतवार एस्टेरेसी (कम्पोजिटी) (Family : Asteraceae) कुल का पौधा है।

भारत में सर्वप्रथम यह घास 1955 में पूना (महाराष्ट्र) में देखी गई थी। माना जाता है कि हमारे देश में इसका प्रवेश 1955 में अमेरिका व कनाडा से आयातित गेहूं के साथ हुआ। आज ये घातक खरपतवार पूरे भारत वर्ष में लाखों हैक्टेयर भूमि पर फैल चुका है। यह खरपतवार जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तामिलनाडू, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड के विभिन्न भागों में फैला हुआ है। खरपतवार विज्ञान अनुसंधान निदेशालय जबलपुर द्वारा किए गए आंकलन के अनुसार भारत में गाजर घास लगभग 350 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में फैल चुकी है, जिसका समय रहते उन्मूलन नहीं किया गया, तो गाजर घास देश के लिए नाशून बन सकती है। यह घास मुख्यत: खुले स्थानों, औद्योगिक क्षेत्रों, सड़कों के किनारे, नहरों के किनारे व जंगलों में बहुतायात में पाया जाता है। अब इसने अपने पांव खेत खलिहानों में भी पसारना शुरू कर दिया है। विश्व में गाजर घास भारत के अलावा अमेरिका, मैक्सिको, वेस्ट इण्डीज, नेपाल, चीन, वियतनाम तथा ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न भागों में भी फैला हुआ है।

गाजर घास की पहचान

वैसे तो गाजर घास पानी मिलने पर साल भर फल-फूल सकती है, परन्तु बारिश के मौसम में ज्यादा अंकुरण होने पर यह खतरनाक खरपतवार का रूप ले लेती है। रेगिस्तान के अलावा यह कहीं भी आसानी से फैल सकता है। गंदी जगह इसे विशेष रूप से पसंद है। इस पौधे की लम्बाई 1.0 से 1.5 मीटर तक हो सकती है। इसकी पत्तियां गाजर की पत्तियों की तरह होती हैं, जिन पर रोयें लगे होते हैं। इसका अधिकतम अंकुरण 25 से 30 डिग्री तापमान पर होता है। गाजर घास का प्रत्येक पौधा लगभग 15000 से 25000 अत्यन्त सूक्ष्म बीज पैदा करता है। इसके बीज हल्के होने के कारण यह दूर तक फैल सकते है। यह खरपवतार 3-4 महीने में अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेता है और 1 साल में इसकी 3-4 पीढ़ियां पूरी हो जाती हैं। चूंकि ये पौधा प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति उदासीन रहता है अत: यह वर्षभर उगता है व फलता फूलता रहता है। इस खरपतवार का बीज बडा ही ढीठ होता है और कभी-कभी दो तीन वर्ष मिट्टी में शांत रहने के बाद भी उग जाता है। यह खरपतवार हर प्रकार की मिट्टी चाहे वह अम्लीय हो या क्षारीय कहीं भी उग सकता है। यह किसी भी परिस्थिती में चाहे सिंचित हो या असिंचित उग सकता है।

गाजर घास का फैलाव

यह खरपतवार एक जगह से दूसरी जगह, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश व एक देश से दूसरे देश का सफर बड़ी आसानी से तय कर लेता है, क्योंकि इस खरपतवार के बीज बहुत ही सूक्ष्म व हल्के होते हैं, जो अपनी दो स्पंजी गद्दियों के सहारे से एक स्थान से दूसरे स्थान तक बड़ी आसानी से पहुंच जाते हैं। यातायात के साधनों, पशु पक्षियों, पैकेजिंग मेटेरियल, पानी, हवा आदि के साथ आसानी से फैल सकता हैं।

गाजर घासस एक विनाशकारी घास क्यों?

गाजर घास सब खरपतवारों में सबसे विनाशकारी खरपतवार है क्योंकि यह खरपतवार कई तरह की समस्याएं पैदा करता है।

* इसकी वजह से फसलों की पैदावार 30-40 प्रतिशत कम हो जाती है। क्योंकि इस खरपतवार में ऐस्क्युटरपिन लेक्टोन नामक विषाक्त पदार्थ पाया जाता है, जो फसलों की अंकुरण क्षमता व बढ़वार पर विपरीत असर डालता है। इसके परागकण, पर-परागित फसलों के मादा जनन अंगों में एकत्रित हो जाते हैं जिससे उनकी संवेदनशीलता समाप्त हो जाती हैं और बीज नहीं बन पाते हैं।

* यह दालों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता को भी कम करता है।

क्रमशः

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9–ए, अजीत नगर,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 98151–04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 90410–14575

वर्ष : 01 अंक : 16
तिथि : 08-12-2025

सम्पादक
परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड
डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly
'KHETI SANDESH' Printed at **Drishti Printers,**
Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market,
Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and
published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar,
Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

दुग्ध व्यवसाय में हिसाब-किताब रखें - ज्यादा मुनाफा कमाएं

यह ज़रुरी नहीं है किताबी ज्ञान किसान भाई और दुग्ध व्यवसायिक बंधुओं के क्षेत्र में उनके डेयरी फार्म पर उनके विशिष्ट जलवायु में पलते पशुओं पर लागू हो, अतः अब समय आ गया है कि किसान भाई, दुग्ध व्यवसायिक बंधु जाग्रत होकर अपने पशुओं का अध्ययन करें और देखें कि उनका दुधारू पशु किस दहलीज पर सबसे ज्यादा दूध देता है और किस दहलीज पर पोषण ज्यादा देने के बाद भी दूध उत्पादन में और बढ़ोत्तरी नहीं होती है।

दुग्ध व्यवसाय का विस्तार करने हेतु आधार : लेखा-जोखा रखने से ज्ञात हुआ कि उसे किसी वर्ष अच्छा लाभ हुआ है, तो वह उस राशि से अतिरिक्त संख्या में अच्छी, दुग्ध उत्पादक मादाएं खरीद कर दुग्ध व्यवसाय का विस्तार

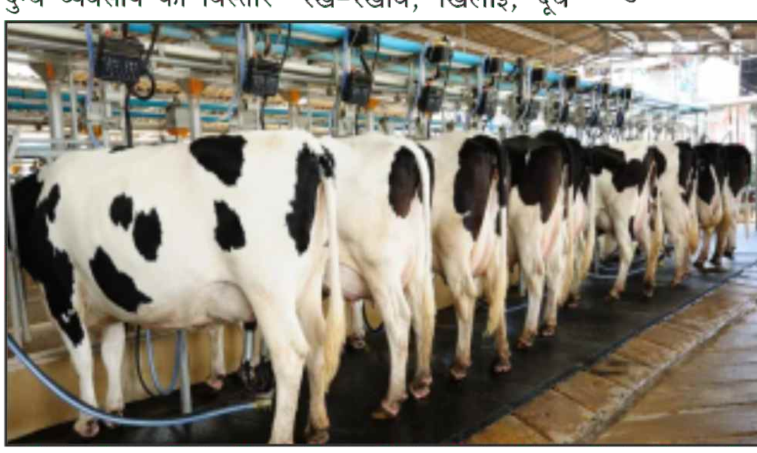

कर सकता है। सारांश, आय-व्यय का लेखा-जोखा दुग्ध व्यवसाय में बढ़ोत्तरी करने का आधार है।

आर्थिक क्षमता का सही आंकलन : दुग्ध व्यवसायिक बंधु को कभी धंधे में आवश्यक ऋण/कर्ज़ लेने की ज़रुरत पड़े तो वह उसके पास मौजूद दस्तावेजों के आधार पर स्वयं तय कर पाएगा कि सह-किसान ऋणलेकर सहज उसे लौटा सकता है। इसके अलावा संबंधित बैंक या वित्तीय संस्था के अधिकारी को वह उसकी आर्थिक क्षमता का ठोस प्रमाण पेश कर पाएगा। अतः आर्थिक क्षमता का सही आंकलन करने हेतु हिसाब-किताब निहायत ज़रुरी है।

दुग्ध-व्यवसाय में लागत का सही मूल्यांकन : भारत में ज्यादातर किसान/दुग्ध व्यवसायिक भाईयों के परिवार के सदस्य दुग्ध व्यवसाय से जुड़े सभी कार्य यानि दुधारू पशु का रख-रखाव, खिलाई, दूध निकालना, साफ-सफाई, दूध का विक्रय आदि संपन्न करते हैं, अर्थात् उन्हें कोई प्रत्यक्ष रूप से वेतन नहीं दिया जाता है और वह राशि जो बाहरी/अन्य मज़दूरों से कार्य करवाने की स्थिति में व्यय होती उत्पादन खर्च में जोड़ी नहीं जाती। लेकिन वास्तव में दुग्ध उत्पादन में लागत का सही मूल्यांकन करने हेतु बाज़ार में उपलब्ध मज़दूरी की दर विशिष्ट राशि उत्पादन खर्च से उत्पन्न चारा कृषि पदार्थों का मूल्य भी बाज़ार भाव से लागत खर्च में जोड़ देना चाहिए। इन मदों का भी लेखा-जोखा रखना चाहिए।

सुयोग्य पशु का चयन : वैज्ञानिक ढंग से पशु-पालन में सुयोग्य यानि उच्च उत्पादक पशु का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु हैं। यह तभी संभव हो सकता है, जब प्रत्येक पशु की सम्पूर्ण वंशावली, उसका उत्पादन तथा संतति के बारे में विस्तृत ब्यौरा लिखा हुआ हो। इस बिंदु को अपनाना सफल दुग्ध व्यवसाय की दिशा में पहला सही कदम होता है।

पशुओं के प्रजनन संबंधी जानकारी : वैज्ञानिक ढंग से पशु-पालन का पहला महत्वपूर्ण स्तंभ है। वैज्ञानिक ढंग से प्रजनन करवाना। यह तभी मुमकिन होगा, जब पशु के प्रजनन संबंधी विस्तृत ब्यौरा लिखा हो, जैसे मादा पशु की गर्मी में आने की तारीख, उसे दिए गए कृत्रिम गर्भाधानों की तारीखें और संख्या, गाभिन होने की तारीख, ब्याने की तारीख, ब्याने के बाद फिर गर्मी में आने की तारीख, कृत्रिम गर्भाधान हेतु इस्तेमाल किए गए सांड का विवरण इत्यादि।

पशुओं के पोषण संबंधी जानकारी : वैज्ञानिक ढंग से पशु-पालन में दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ है वैज्ञानिक ढंग से पोषण प्रबंधन करना। चूंकि पोषण पर कुल पशु-पालन की लागत का 60 प्रतिशत खर्च होता है, अतः सोच-समझ कर, न्याय युक्त और विवेकी ढंग से आहार व्यवस्था करनी चाहिए। पशुओं को उनके शरीर भार दुग्ध उत्पादन तथा कार्य के स्वरूप (यानि भारी, मध्यम या हल्का/कम कार्य) पर आधारित संतुलित, पौष्टिक आहार देना चाहिए। जहां ज्यादा आहार देने से आर्थिक हानि होगी, वहीं कम आहार देने से उत्पादन में कमी होगी। अतः सुवर्णमध्य खोजना चाहिए अर्थात् सुयोग्य आहार दीजिए।

पशुओं के प्रबंधन संबंधी जानकारी : डेयरी फार्म पर सभी क्रियाकलाप चक्रीय होते है, यानि समयबद्ध तरीके से एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। उदा, गर्मी में आए मादा पशु को समय से यानि 12 घंटे के अंदर गर्भित करवाना पड़ता है। इसके अलावा एक विशिष्ट कालवधि में ज्यादा से ज्यादा मादाओं को गर्मी में लावें, गर्भित करवाने के प्रयास किए जाते हैं, ताकि विशिष्ट कालवधि में ज्यादा बछड़े व बछियों की फसल पैदा हो ताकि उनका लालन पोषण सुव्यवस्थित ढंग से करवा सकें। अगर ऐसा नहीं हुआ तो दुग्ध उत्पादन प्रभावित होकर डेयरी फार्म की आर्थिक स्थिति कमज़ोर होगी। यह सब तभी मुमकिन होगा, जब सभी क्रियाकलापों का विस्तृत लिखा जाए।

पशु-क्रय/विक्रय का लेखा-जोखा : अनुत्पादक / अवांछित पशुओं की झुंड से छंटाई अर्थात् उन्हें बेचना लेकिन कौन-सा पशु अनुत्पादक या अवांछित है, यह तभी पता चलेगा जब उनके शुरूआत से उत्पादन संबंधी विस्तृत ब्यौरा उपलब्ध हो। अतः निम्नलिखित मदों पर पशुओं के बारे में जानकारी लिखी जानी चाहिए :

* ऐसे पशु जिनकी बढ़वार/ शरीर भार, वृद्धि कम है - अंधे, लूले-लंगड़े, अपाहिज पशु।

* ऐसे मादा पशु जो समय से गर्मी में नहीं आते हैं।

* जिन मादाओं को बार-बार कृत्रिम गर्भाधान करवाना पड़ता है, अर्थत् जिनमें गर्भ नहीं ठहरता (बांझ मादाएं)।

* जिन मादाओं के प्रजनन अंगों में कोई स्थायी नुस्ख है। उदाहरण गर्भाशय का मुख खराब है या अंडाणु वाहक नली खराब है या अंडकोष दोषपूर्ण है। जिन मादाओं के थन थनैला जैसे रोग के कारण अकार्यक्षमता हो चुके है। वह नर पशु जिनमें प्रजनन अंगों की कोई बीमारी जैसे - ट्राइकोमोनियासिस/ ब्रुसेल्लेसिस इत्यादि है।

आलू हमारे देश की प्रमुख नकदी फसल है। भारत जैसे विशाल देश में खाद्य समस्या को सुलझाने में आलू महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अधिक पैदावार लेने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी फसल को हानिकारक कीटों एवं रोगों से बचाया जाए। इसकी फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोग इस प्रकार से हैं।

आलू के प्रमुख नाशीजीव एवं उनका नियंत्रण

डॉ. श्याम सिंह सारंगदेवोत, डॉ. पी.एस. नरूका, डॉ. शिल्पी करेकेट्टा, डॉ. सी.पी. पचौरी, डॉ. संजय कुमार एवं डॉ. शिल्पी वर्मा, वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र, नीमच
(राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर)

1. माहू/चेपा : आलू की फसल में प्राय: पीले छोटे तथा हरे रंग के माहू कीट पाए जाते हैं। यह कीट पौधे की निचली पत्तियों के नीचे की सतह पर अधिक और चोटी की पत्ती पर कम पाए

जाते है। यह कीट मुख्य रूप से विषाणु रोगों को फैलाने में सहायक है और पत्तियों के रस को चूसते है, जिससे आलू की फसल बुरी तरह प्रभावित होती है।

2. आलू कंद शलभ : इस कीट की इल्ली अवस्था ही हानिकारक होती है, जो आलू के कंद को छेद कर गुदे को खाती है। आलू की फसल में खेत से

ही इसका आक्रमण शुरू हो जाता है, जो भंडार गृह में भी भारी रहता है तथा यह गोदाम में ही सर्वाधिक नुकसान पहुंचाता है। यह कीट खेत में अक्तूबर से फरवरी-मार्च तक नुकसान पहुंचाता है। प्रारंभिक अवस्था में इल्लियां पत्तियों में सुरंग बना कर ऊपर व नीचे वाली उपत्वचा के बीच की कोशिकाओं को खाती रहती है, जिससे पत्तियों में चीटियां पड़ जाती है। यह तने में छेद करके उसमें सुरंग बनाती है, जिससे पौधे में भोज्य पदार्थ का संचार बंद हो जाता है। फलत: पौधे मुरझा कर सूख जाते है तथा खेत में इल्ली बाहर निकाले हुए आलू के पिथ में सुरंग बनाती है। इस कीट से प्रभावित आलू गोदाम में पहुंचते है, तो वहां पर प्रजनन कर अपनी संख्या को बढ़ा लेते हैं। प्रभावित आलू को आसानी से उस पर लगी विष्ठा से पहचान सकते है। शीत गृह में रखे आलू में इसका प्रकोप बिल्कुल कम हो जाता है।

3. अगेती झुलसा : यह रोग पिछेती झुलसा के कुछ समय पहले दिखाई देता है। बुवाई के तीन-चार सप्ताह बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते है। सर्वप्रथम

पौधों की निचली पत्तियों पर छोटे-छोटे एवं दूर-दूर हल्के भूरे कोणीय आकार के धब्बे बनते हैं, जो बाद में फफूंद की गहरी नीली हरित वृद्धि ढक जाते है। कुछ ही समय में ये धब्बे पत्तियों की ऊपरी सतह में फैल जाते है। धब्बे आकार में बढ़ते रहते है और शीघ्र ही तिकोनी या अंडाकार आकृति ग्रहण कर लेते है। साथ ही गहरे भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते है। यदि पुराने धब्बों को ध्यान से देखा जाए तो उनमें गोल चक्कर बनाती हुई हल्के रंग की धारियां दिखाई पड़ती है। धब्बों के चारों और का हरा रंग-धुंधला हो जाने से एक संकरा हरितमाहीन क्षेत्र बन जाता है, जो धब्बों के आकार के साथ-साथ बढ़ता रहता है। नम मौसम में धब्बे फैल कर आपस में मिल जाते है, इन भागों में सड़न भी आरंभ हो जाती है। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियां सिकुड़ कर भूमि में गिर जाती है। रोग का संक्रमण आलू के कंदों पर भी होता है और उनमें विगलन हो जाता है, इस रोग से संक्रमित पौधों में कंद संख्या में कम एवं आकार में छोटे रह जाते है तथा उनमें स्टार्च की मात्रा भी कम हो जाती है।

4. पिछेती झुलसा : इस रोग के लक्षण दिसंबर-जनवरी माह में दिखाई देने लगते हैं। सर्वप्रथम पत्तियों पर हल्के-पीले अथवा धुंधले हरे रंग के धब्बे पड़ते हैं, जो बाद में भूरे काले अथवा बैंगनी, काले रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। ये धब्बे पत्तियों के किनारे या सिरों से पड़ना प्रारंभ होते हैं और शीघ्र ही अनियमित आकार में बढ़ कर पत्तियों की निचली सतह में फैल जाते हैं। मौसम के शुष्क होने पर प्रभावित पत्तियां कठोर होकर सिकुड़ जाती हैं। इस रोग का प्रकोप पौधों के सभी भागों जैसे पत्तियों, डंठल और कंदों पर होता है।

5. कृष्णान्त या ब्लैक हर्ट : यह बीमारी कंदों को भंडारण, स्थानान्तरण एवं बाज़ार के दौरान प्रभावित करती है। यह प्रतिकूल ऑक्सीजन संबंधों के कारण उत्पन्न होती है। जब कंदों को अपर्याप्त हवादार एवं पूरी तरह से बंद भंडारण

शेष पृष्ठ 8 पर

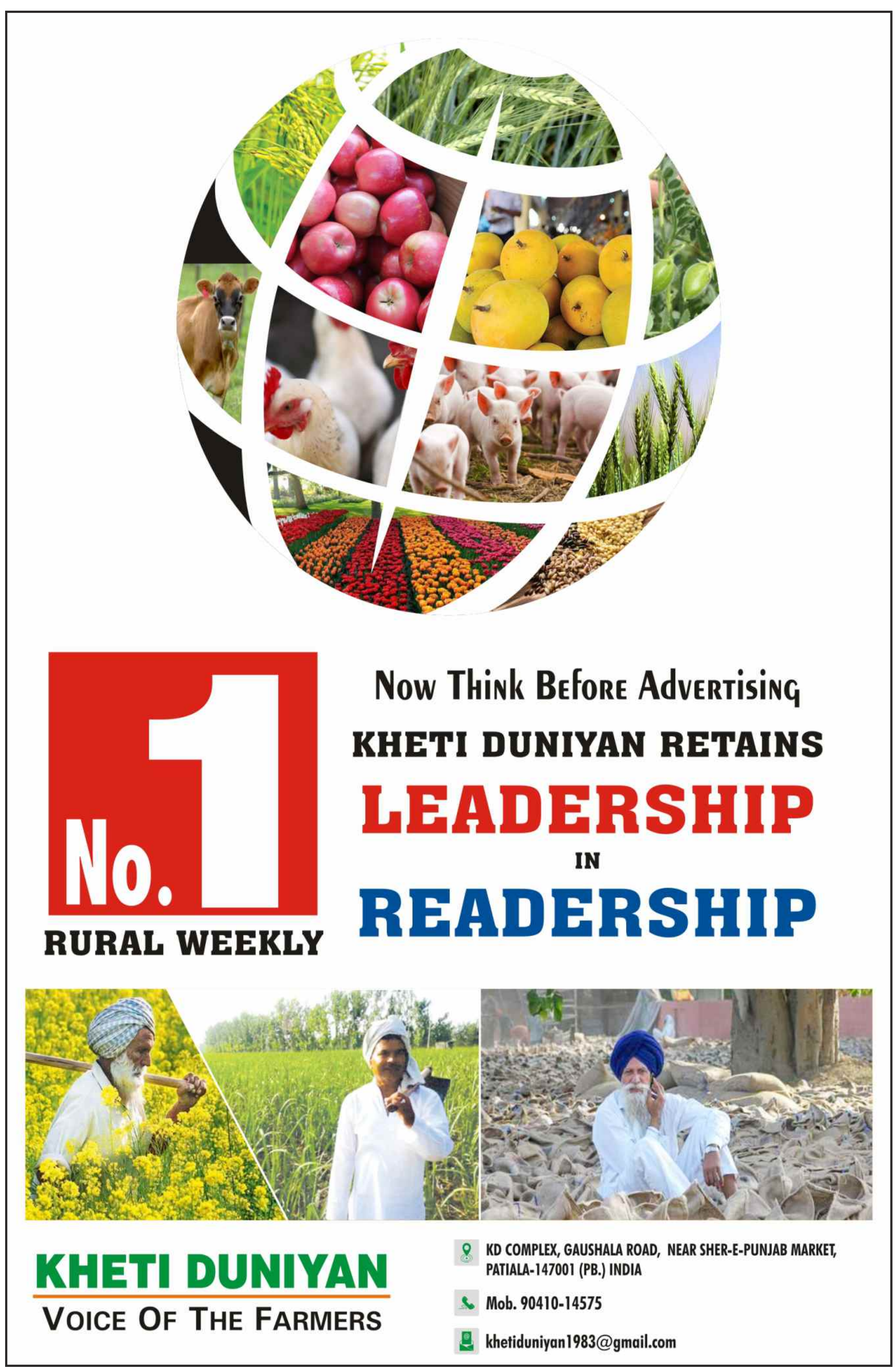

फल वृक्षों का रोपण कैसे करें

वर्गाकार विधि : यह विधि सबसे अधिक सरल होने के कारण अधिकतम प्रयोग में लाई जाती है। इस विधि में पौधे वर्ग के प्रत्येक कोने पर लगाए जाते हैं। वृक्ष की आवश्यकता अनुसार वर्ग का आकार रखा जाता है। वर्गाकार विधि सेलगाए गए वृक्षों में बगीचे का रख-रखाव करने में सरलता होती है।

आयताकार विधि : इस विधि में पंक्ति से पंक्ति की दूरी, वृक्ष से वृक्ष की दूरी से अधिक होती है। दो आमने-सामने की पंक्तियों के चार वृक्ष मिल कर एक आयत बनाते हैं। यह विधि भी सरल है और अपनाई जा सकती है।

पूरक या पंचवृक्षी विधि : यह विधि वर्गाकार विधि की ही भांति है, केवल अंतर इतना है कि वर्ग के मध्य में एक ऐसे वृक्ष का रोपण और कर दिया जाता है, जोकि अपेक्षाकृत अल्प आयु होता है और उद्यान के स्थायी वृक्षों की युवावस्था आने से पहले ही फल देकर अपना जीवन समाप्त कर देता है।

त्रिभुजाकार विधि : इस विधि में भी पौधे वर्गाकार विधि की भांति ही लगाए जाते हैं, परन्तु दूसरी, चौथी, छटी और ऐसी ही अन्य सम पंक्तियों के पौधे पहली, तीसरी, पांचवीं और ऐसी अन्य विषम पंक्तियों के बीच में लगाए जाते हैं। इस विधि का रेखांकन अपेक्षाकृत कठिन होता है।

षटभुजाकार विधि : इस विधि को समत्रिबाहु त्रिभुज के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि इस विधि में वृक्ष समत्रिबाहु त्रिभुज के तीनों कोणों पर लगाए जाते हैं। षटभुज के आकार में छ: वृक्ष लगाते हैं और सातवां इसके केन्द्र में लगाया जाता है। इस विधि में वर्गाकार विधि की अपेक्षा लगभग 15 प्रतिशत वृक्ष अधिक रोपे जाते हैं।

कन्टूर विधि : पर्वतीय स्थानों में जहां भूमि समतल नहीं होती है, वृक्ष सीधी पंक्तियों में नहीं लगाए जा सकते। ऐसे स्थानों पर समोच्च रेखा के अनुसार ही वृक्ष रोपण किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में केवल पंक्ति के साथ-साथ ही खेत को तैयार कर सकते हैं। इस विधि में वृक्षों की दूरी समान नहीं रखी जा सकती।

पौध रोपण : फलों के पौधे लगाने का उत्तम समय वर्षा ऋतु है, अर्थात् जुलाई-अगस्त, पौधे वर्षा ऋतु के आरम्भ में ही लगा देने चाहिए। वर्षा ऋतु में लगाए गए पौधे वायुमंडल में नमी अधिक होने के कारण शीघ्र लग जाते हैं। साथ ही सिंचाई की आवश्यकता भी नहीं पड़ती है।

पौधे रोपित करते समय सावधानियां : * पौधा गड्ढे में उतनी गहराई में लगाना चाहिए, जितनी गहराई तक वह नर्सरी या पॉलीथीन की थैली में था। अधिक गहराई में लगाने से तने को हानि पहुंचती है और कम गहराई मेंलगाने से तने को हानि पहुंचती है और कम गहराई में लगाने से जड़ें मिट्टी के बाहर जाती हैं, जिससे उनको क्षति पहुंचती है।

* पौधे लगाते समय लिपटी हुई घास या टाट के टुकड़ों को जड़ों की पैंदी से खोलकर हटा लेना चाहिए।

* पौधे का कलम किया हुआ स्थान अर्थात् मूलवृन्त (रूट स्टॉक) और उन्नत पौध की डाली का मिलन बिन्दु भूमि से ऊपर रहना चाहिए। इसके मिट्टी में दब जाने से वह स्थान सड़ने लग जाता है और पौधा मर जाता है।

* मूलवृन्त और सांकुर डाली के जोड़ की दिशा दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर रहना चाहिए। ऐसा करने से तेज़ हवा से जोड़ टूटता नहीं है।

* पौधे लगाने के पश्चात् मिट्टी को चारों ओर से भली-भांति दबा देना चाहिए।

* पौधे लगाते समय उनके तने के पास चारों ओर मिट्टी उठी हुई रखें, जिससे पानी पौधे के तने को ना छुए।

* जहां तक सम्भव हो पौधे सायंकाल के समय लगाए जाने चाहिए।

लगाए जाने वाले पौधों के गुण : पौधे जो भी लगाए जाएं, उनमें निम्नलिखित गुण होने चाहिए। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है :

* पौधे की उम्र कम से कम एक वर्ष होनी चाहिए।
* पौधे अपनी किस्मों के अनुसार सही होने चाहिए।
* किसी भी प्रकार के रोग से ग्रसित नहीं होने चाहिए।
* पौधे एक तने वाले सीधे, कम ऊंचाई, फैले व उत्तम रहते हैं।
* पौधों का मिलन बिन्दु अच्छी तरह जुड़ा होना चाहिए।
* पौधा पॉलीथीन या गमला में लगा हुआ हो। ऐसे पौधे लगाने पर कम मरते हैं।
* यदि पौधे नर्सरी से उखाड़े गए हों तो उनकी जड़ों में पर्याप्त मिट्टी होनी चाहिए।

पपीते की उन्नत प्रजातियों की वैज्ञानिक खेती

आर. एस. सेंगर व आलोक कुमार सिंह, कृषि जैव प्रौद्योगिकी विभाग, सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ एवं डी.के. श्रीवास्तव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ

गतांक से आगे

को-6 : इस प्रजाति का चयन वर्ष 1986 में पूसा जायंट प्रजाति से किया गया है। यह पपेन उत्पादन तथा ताज़ा खाने के लिए उपयोगी पाई गई है। इसके पौधे छोटे होते हैं तथा फलों की तुड़ाई पौध रोपण के आठवें माह से शुरू हो जाती है। इसके फलों का औसत वज़न 2 किलोग्राम तक होता है। फलों के गुदे का रंग पीला होता है और कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.60 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौधा औसत उपज 80-100 फल है। प्रति फल शुष्क पपेन की मात्रा 7.5 से 8.0 ग्राम तक होती है।

को-7 : यह पूसा डेलिशियस, को-3, सी.पी.-75 एवं कुर्ग हनीड्यू के बहुसंकरण द्वारा वर्ष 1997 में विकसित संकर किस्म है। को-7 एक गायनोडायोसियस प्रजाति है, जिसमें फल ज़मीन से 52.2 सैंटीमीटर की ऊंचाई पर लगते हैं। इसके फल लम्बे, अंडाकार होते हैं और गुदे का रंग लाल होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 16.7 डिग्री ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति 112.7 फल प्रति पौध उपज देती है, जोकि 340.9 टन प्रति हैक्टेयर है।

रांची : यह प्रजाति झारखंड की राजधानी रांची के आस-पास छोटानागपुर क्षेत्र में पाई जाती है। इसमें नर, मादा तथा उभयलिंगी तीनों प्रकार के पौधे मिलते हैं। इसके फल काफी बड़े होते हैं तथा उभयलिंगी फल का वज़न 15 किलोग्राम तक पाया गया है। मादा पेड़ से एक फल का वज़न 5 से 8 किलोग्राम तक पाया जाता है, जो दूर से देखने पर कद्दू जैसा दिखाई देता है। इसका बीज बाहर कहीं भी ले जाकर बोने से फल का वज़न घट जाता है।

नर्सरी प्रबंधन : पपीते की खेती के लिए पौध तैयार करना ही महत्वपूर्ण कार्य है। खेत में पौधों को 1.8×1.8 मीटर की दूरी पर लगाना हो तो एक हैक्टेयर में रोपण हेतु 250 से 300 ग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज बोने के लिए 6×8 इंच आकार के पॉलीथीन बैग प्रयोग में लाए जाते हैं। बीजों का उपचार कवकनाशी से करना चाहिए तथा बीजों को 1.0 सैंटीमीटर की गहराई पर पॉलीथीन की थैलियों में बीचों-बीच बोना चाहिए तथा बाद में स्वस्थ पौधों को छोड़ कर शेष पौधों को निकाल देना चाहिए। बीज बोने के बाद उनकी समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौध 20 से 25 सैंटीमीटर की हो जाने पर रोपण कर देना चाहिए। बीजों को थैलियों में बोने से पहले 200 पी.पी.एम. जिब्रेलिक से उपचारित करने के बाद बोने से जमाव की दर बढ़ जाती है तथा पौधों की ऊंचाई में वृद्धि होती है।

प्रवर्धन : पपीते का प्रवर्धन मुख्य रूप से बीज द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा तैयार पौधे कम समय में जल्दी पैदावार देने लगते हैं। इसमें ऐसे बीज का चुनाव करना चाहिए, जोकि स्वस्थ तथा ओजस्वी हों। इसे किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए।

बीज की मात्रा : 300-500 ग्राम प्रति हैक्टेयर।

पौध तैयार करने का समय : साधारणत: पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15-20 सैंटीमीटर की ऊंचाई के हो जाते हैं। बिहार में जहां जल जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेज़ी से फैलते हैं, वहां अगस्त के अंत में या सितंबर के शुरू में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : पपीते को बहुत अधिक खादकी आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रीय स्टेशन पर किए गए प्रयोगों द्वारा साबित हुआ है कि प्रत्येक फलने वाले पेड़ को 200-250 ग्राम नाइट्रोजन, 200-250 ग्राम फास्फोरस तथा 250-500 ग्राम पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। साधारणत: उपरोक्त खाद तत्वों के लिए यूरिया 450 से 550 ग्राम, सिंगल सुपर फास्फेट 1200 से 1500 ग्राम तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश 450-850 ग्राम लेकर उन्हें मिश्रित कर लेना चाहिए। इसके बाद चार भागों में बांट कर प्रत्येक माह के शुरू में जुलाई से अक्तूबर तक पेड़ की छांव के नीचे पौधे से 30 सैंटीमीटर की गोलाई में देकर मृदा में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्राम प्रति लीटर पानी में) तथा ज़िंक सल्फेट (5 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना चाहिए।

सिंचाई : पपीते के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबंध बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता, तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे पौधे जीवित रह सकें। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जाते हैं तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी अधिक होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते हैं। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पपीते में टपक सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अंतर्गत 8-10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी पाई गई है। इस प्रकार इससे 40-50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलीथीन की पलवार बिछानी चाहिए।

फूल तथा फल लगना : पौधे लगाने के लगभग 6 माह बाद मार्च-अप्रैल से पौधों में फूल आने लगते हैं। पपीते में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाए जाते हैं। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते हैं, किन्तु मादा पौधे स्थायी होते हैं। नर एवं मादा पौधों की पहचान फलू के आधार पर कर सकते हैं। ज्यों ही नर पौधे दिखाई पड़ें, उन्हें तुरंत काट कर खेत से निकाल देना चाहिए, किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य छोड़ देनी चाहिए।

उपज : पपीते में औसतन प्रति पेड़ 50 से 100 किलोग्राम तक उपज प्राप्त होती है। फलों का भार 0.5 किलोग्राम से 3.0 किलोग्राम तक होता है। पपीके के एक अच्छे बाग से 300 से 350 क्विंटल फल प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं। प्रति हैक्टेयर उपज बाग में फल लगने वाले पौधों की संख्या तथा प्रजातियों पर निर्भर करती है।

यह एक प्रकार का कार्बनिक पदार्थ है, जो किसी मादा कीट पतंगों द्वारा प्रकृति में उनके नर कीटों को समागमन क्रिया के लिए आकर्षित करने हेतु उत्सर्जित किया जाता है। अलग–अलग कीटों की मादाओं द्वारा उत्सर्जित विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों की पहचान करके इनका प्रयोगशालाओं में कृत्रिम रूप से संश्लेषण करके बड़े पैमाने पर उत्पादन करके, उपयोग किया जाता है। हमारे देश में अनेक प्रकार की संस्थान, प्राइवेट कंपनियां इस दिशा में काम कर रही हैं, जिसके द्वारा खेतों में विभिन्न कीटों की संघनता का आंकलन करने एवं उनको बड़े पैमाने पर पकड़ कर नष्ट करने के लिए फेरोमोन तकनीक का विकास किया गया है।

फेरोमोन ट्रेप

कीट प्रबंधन की सरल, सस्ती पर्यावरण अनुकूल तकनीक

डॉ. अभिषेक शुक्ला, कीट विज्ञान विभाग, न.म. कृषि महाविद्यालय, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी (गुजरात)

फेरोमोन ट्रेप को हम गंध पाश के नाम से भी जानते है। फेरोमोन ट्रेप एक साधारण प्रकार का बना हुआ उपकरण है। इसमें कीप के आकार के मुख्य भाग पर लगे ढक्कन पर मादा कीट की गंध का ल्यूर या कैप्सूल लगाया जाता है, इससे नर कीट आकर्षित होते है। इस प्रकार से प्रत्येक कीट का अलग–अलग ल्यूर होता है, जिस कीट की मादा का ल्यूर लगाया जाता है, उस कीट का नर इस नकली गंध के कारण आकर्षिक होकर फेरोमोन ट्रेप की कीप में गिर जाता है, जो नीचे लगी हुई थैली में वापस बाहर निकल नहीं पाता है। लगातार रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रयोग के बाद भी हम कई फसलों के विभिन्न नाशीकीटों का सफलतापूर्वक प्रबंधन करने में सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहे है। इन स्थितियों में फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करके नाशीकीटों की स्थिति का आंकलन तथा अनुमान करने तथा नर पतंगों को पकड़ कर नष्ट करके इनका सफलतापूर्वक नियंत्रण किया जा सकता है।

फेरोमोन ट्रेप क्या है? : यह एक प्रकार का कार्बनिक पदार्थ है, जो किसी मादा कीट पतंगों द्वारा प्रकृति में उनके नर कीटों को समागमन क्रिया के लिए आकर्षित करने हेतु उत्सर्जित किया जाता है। अलग–अलग कीटों की मादाओं द्वारा उत्सर्जित विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों की पहचान करके इनका प्रयोगशालाओं में कृत्रिम रूप से संश्लेषण करके बड़े पैमाने पर उत्पादन करके, उपयोग किया जाता है। हमारे देश में अनेक प्रकार की संस्थान, प्राइवेट कंपनियां इस दिशा में काम कर रही है, जिसके द्वारा खेतों में विभिन्न कीटों की संघनता का आंकलन करने एवं उनको बड़े पैमाने पर पकड़ कर नष्ट करने के लिए फेरोमोन तकनीक का विकास किया गया है। इसमें से कुछ मुख्य कीटों, जिनके फेरोमोन ट्रेप आज बाज़ार में उपलब्ध है, की जानकारी निम्न अनुसार है :

स्पोडोप्टेरा लिटुरा : इस कीट को तंबाकू की सुंडी के नाम से जाना जाता है। इसका उपद्रव

तंबाकू, गोभी, भिंडी आदि फसलों में होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में स्पोडो–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

हेलीयोथिस आर्मीजेरा : इस कीट को अमेरिकन बोलवार्म या चना फली बेधक आदि के नाम से जाना जाता है। इसका प्रकोप कपास, चना, अरहर, टमाटर, मटर आदि फसलों में बहुतायत से होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में हेली–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

पेक्टिनोफोरा गोसीपिलेला : इसे कपास की गुलाबी सुंडी भी कहते है। यह कीट आज हमारे देश में कपास का प्रमुख कीट है। इसकी उपस्थिति भिंडी की फसल में भी देखी जाती है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में पेक्टीन–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

इरियास प्रजाति : इसे कपास का गूलर बेधक या भिंडी के प्रोरह तथा फल बेधक के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रकोप कपास तथा भिंडी की फसल में देखा जाता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में ईरविट–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

हीरक पृष्ठ शलभ (डायमंड बेक मोथ) : इस कीट का प्रकोप सरसों, गोभीवर्गीय सब्जियों, मूली आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में डीबीएमल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

राईनोसोरस भृग : इस कीट का प्रकोप नारियल, खजूर, ताड़ आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में आरबील्यूर के नाम से उपलब्ध है।

काईलो इनफेसकेटुलस : इस कीट का प्रकोप गन्ने की फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में इएसबी–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

ल्यूसीनोडस ओर्बोनेलिस : इस कीट का प्रकोप बैंगन की फसलों पर होता है। इसको बैंगन का प्ररोह तथा फल बेधक के नाम से भी जाना जाता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में ल्यूसीन–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

सिर्कोफेगा इंसुर्लेटा : इस कीट का प्रकोप धान्य फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में सिर्पो–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

रेड पाम वीविल : इस कीट का प्रकोप नारियल, खजूर, ताड़ आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में आरपीडब्ल्यू–ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

फेरोमोन ट्रेप के उपयोग में ल्यूर (वायल/सेप्टा) तथा ट्रेप दोनों का प्रयोग किया जाता है। यहां पर ल्यूर का उपयोग नर पतंगों को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। ट्रेप के अंतर्गत ऊपर का एक ढक्कन होता है, जो ल्यूर की धूप, बारिश, गर्मी से सुरक्षा करता है तथा एक छल्ला रहता है, जिसमें कीट एकत्र करने की थैली फंसाई जाती है। यह थैली कीटों को फंसाने और संग्रह करने के काम आती है।

फेरोमोन ट्रेप का उपयोग कैसे करें : खेतों में इन फेरोमोन ट्रेप को सहारा देने के लिए एक लकड़ी का डंडा ज़मीन में गाड़ना होता है, इस डंडे के सहारे छल्ले को बांध कर इसे लटका दिया जाता है तथा ऊपर के ढक्कन में बने स्थान पर ल्यूर को फंसा दिया जाता है और बाद में छल्लों में बने पैरों पर इसे कस दिया जाता है। कीट एकत्र करने की थैली को छल्लों में विधिवत रूप से लगा कर इसके निचले सिरे को लकड़ी के डंडे से सहारे एक छोर पर बांध दिया जाता है। फेरोमोन ट्रेप की ऊंचाई इस प्रकार से रखनी चाहिए कि ट्रेप का ऊपरी भाग फसल की ऊंचाई से 1–2 मीटर ऊपर रहे।

ट्रेप का निर्धारण तथा उसकी संघनता : प्रत्येक कीट के नर पतंगे को बड़े पैमाने पर एकत्रित करने के लिए सामान्यत: 5 से 8 ट्रेप प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होते है। यहां एक ट्रेप से दूसरे ट्रेप की दूरी 30 से 40 मीटर रखनी चाहिए। कीटों की संघनता का अनुमान लगाने के लिए एक ट्रेप प्रति 2 हैक्टेयर की दर से लगाना चाहिए। इस ट्रेप को खेत में लगा देने के उपरांत इसमें फंसे पतंगों की नियमित जांच करनी चाहिए तथा पकड़े गए पतंगों के आंकड़ों का रिकॉर्ड रखना चाहिए ताकि उनकी गतिविधियों पर निगरानी रखी जा सके। बड़े पैमाने पर कीटों को पकड़ कर उनको नष्ट करने हेतु जब इसका उपयोग किया जाता है, तब थैली में एकत्रित कीटों को नियमित तौर पर नष्ट करके थैली को समय–समय पर खाली करते रहना चाहिए, जिससे उनमें नए पतंगों के घुसने की जगह बन सके। इस विधि को अपनाने का फायदा यह है कि किसान अपने खेतों पर ही कीट की उपस्थिति तथा उसकी संघनता का आंकलन कर उसके अनुरूप प्रबंधन उपायों के विषय में निर्णय ले सकता है, जिसमें कीटनाशी रसायनों का प्रयोग भी शामिल है। प्राय: इसके कारण अनावश्यक रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रयोग में भी कमी की जा सकती है।

फेरोमोन तकनीक तथा ल्यूर प्रयोग की सीमाएं :

1. इसके उपयोग से कीटनाशी दवाओं के अनावश्यक प्रयोग में भी कमी की जा सकती है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण में कमी लाई जा सकती है तथा खेती खर्च को कम किया जा सकता है।

2. कीटनाशी रसायनों के कम उपयोग से वातावरण प्रदूषण में कमी लाई जा सकती है। फेरोमोन तकनीक सरल विष रहित तकनीक है, अत: सभी के लिए सुरक्षित है।

3. फेरोमोन तकनीक के उपयोग से कीटों के विस्तार को सीधे रोका जा सकता है। इस प्रकार से कीटों से होने वाले नुकसान को रोकने में मदद मिलती है, जिससे कृषि उत्पादन में स्वत: 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

4. फेरोमोन विषैले नहीं होते है तथा लक्ष्य विशेष के विरुद्ध ही काम करते है, इसलिए सभी के लिए सुरक्षित होता है।

5. ये जैविक कीट नियंत्रण हेतु उपयोगी प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परभक्षी तथा परजीवियों के लिए सुरक्षित है, अत: इसे हम समन्वित नाशीकीट प्रबंधन के एक घटक के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं।

6. किसान भाई, फेरोमोन ट्रेप की सहायता से कीटों की उपस्थिति तथा संख्या का भली–भांति अनुमान लगा सकते है तथा इसी के अनुरूप रासायनिक

शेष पृष्ठ 10 पर

गाजर के पत्ते के अनोखे लाभ

रजनी एवं वर्षा रानी, खाद्य एवं पोषण विभाग, चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सर्दियों का मौसम है और इस मौसम में सब्ज़ियों की खूब पैदावार होती है। गाजर का सेवन हमारे लिए स्वास्थ्यपूर्वक है, जिसका कई तरीकों से इस्तेमाल किया जाता है। आमतौर पर इसे सब्ज़ी, जूस एवं सलाद के रूप में खाया जाता है। अक्सर देखा गया है कि गाजर के पत्तों को व्यर्थ समझ कर फेंक देते हैं, लेकिन क्या आप जानते हैं कि गाजर के हरे पत्तेभी पोषक तत्वों का भंडार हैं और विभिन्न तरीकों से सेहत को लाभ पहुंचाते हैं। जी हां, गाजर की पत्तियों को सलाद या सूप के रूप में भी सेवन कर सकते हैं। इसके अलावा इसे सब्ज़ी/साग की तरह भी इस्तेमाल किया जाता है या फिर इसे किसी फल के साथ पीस कर स्मूदी बना सकते हैं। गाजर के पत्ते स्वादिष्ट होने के साथ-साथ शरीर के लिए ज़रुरी पोषक तत्वों और विटामिन से भरपूर होते हैं। आइए, आपको बताते हैं सेहत के लिहाज से क्यों बेहद खास हैं गाजर की पत्तियां।

गुर्दा, यकृत एवं हृदय स्वस्थ रहते हैं

गाजर की पत्तियों का सेवन करने से शरीर के तीन सबसे महत्वपूर्ण अंग : गुर्दा, यकृत एवं हृदय स्वस्थ रहते हैं। इसका कारण यह है कि गाजर की पत्तियां रक्त शोधक की तरह काम करती हैं। इसका सेवन करने से रक्त शुद्ध होता है, जिससे गुर्दे पर अतिरिक्त भार नहीं आता है और गुर्दा स्वस्थ रहता है। शुद्ध रक्त के कारण हमारा शारीरिक कार्य ठीक रहता है, तो यकृत भी अपना कार्य अच्छी तरह से करता है। इसी कारण गाजर की पत्तियों का सेवन करने से धमनियों में जमा रक्त वसा कम होती है और हृदय स्वस्थ रहता है।

क्लोरोफिल की मात्रा बहुत ज्यादा होती है

सभी हरी पत्तियों में क्लोरोफिल होता है और क्लोरोफिल हमारे शरीर के लिए एक बहुत फायदेमंद तत्व है। गाजर की पत्तियों में पाया जाने वाला क्लोरोफिल शरीर में लाल रक्त कणिकाओं यानी रेड सेल्स के बनने की प्रक्रिया को तेज़ करता है। इस वजह से जिन लोगों में रक्त की कमी होती है, उन्हें प्रति दिन गाजर की पत्तियों का जूस, चटनी या सब्ज़ी/साग सेवन करना फायदेमंद होता है।

रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाएं

गाजर की हरी पत्तियों में बहुत प्रकार के मिनरल्स एवं विटामिन्स होते हैं, जो शरीर के लिए फायदेमंद होते हैं। गाजर की पत्तियां विटामिन सी का सबसे अच्छा स्त्रोत होती है। इसमें विटामिन 'के' और विटामिन 'ए' भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। साथ ही कई मिनरल्स जैसे पोटाशियम, आयरन, मैग्नीशियम और कैल्शियम आदि भी अच्छी मात्रा में होता है। इसलिए गाजर की पत्तियों का सेवन करने से प्रतिरक्षा प्रणाली स्वस्थ होती है और हमारी शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ती है।

वज़न नियंत्रित रखने में कारगर

गाजर की पत्तियां फाइबर का बहुत अच्छा स्त्रोत होती हैं। पेट और पाचन संबंधी समस्याओं को दूर करने के लिए फाइबर बहुत आवश्यक होता है। इसके अलावा फाइबर रक्त वसा को कम करता है और हृदय संबंधित बीमारी को खतरे से बचाता है। इसके सेवन से आपको पोषक तत्व तो मिलते ही हैं, साथ ही आंतों और रक्त की सफाई हो जाती है। गाजर की हरी पत्तियों से ऊर्जा भी मिलती है एवं पेट भी भरा रहता है तथा इसमें मौजूद फाइबर कब्ज़ का निवारण करने में भी सहायक होता है। इस तरह आप गाजर की पत्तियां खाकर कई बीमारियों से बच सकते हैं।

दांत और मसूड़े को स्वस्थ बनाएं

गाजर की पत्तियों में केराटिन एवं विटामिन ए उच्च मात्रा में होते हैं, इसलिए यह महत्वपूर्ण पोषक तत्व दांत और मसूड़े को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है। ये पोषक तत्व पट्टिका से लड़ने भी महत्वपूर्ण भूमिका और दांत एवं मसूड़े की तामचीनी को मज़बूत करते हैं।

हड्डियों को बनाती है मज़बूत

हड्डियों को मज़बूत बनाने के लिए गाजर की हरी पत्तियों का सेवन करना चाहिए, क्योंकि गाजर की हरी पत्तियों में विटामिन 'के' और 'ए', पोटाशियम और कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप हड्डियों के द्रव्यमान में सुधार होता है। ये पोषक तत्व हड्डियों के टूटने को रोक सकते हैं, साथ ही ऑस्टियोपोरोसिस की रोकथाम करने में सहायक भूमिका निभाते हैं।

कैंसर से बचाते हैं गाजर की पत्तियों के एंटीऑक्सीडेंट गुण

शोध के अनुसार गाजर की पत्तियों में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट गुण कैंसर जैसी गंभीर बीमारी से शरीर को बचाने में सक्षम होते है। दरअसल, ये ऑक्सीकरणरोधी गुण शरीर में बढ़ने वाले ट्यूमर या कैंसर सेल्स की वृद्धि को रोकते है। प्रति दिन गाजर की पत्तियों का सेवन करने से भविष्य में कैंसर होने की संभावना कम हो जाती है।

मधुमेह को नियंत्रण करने में सहायक

गाजर की पत्तियों में 12 ग्राम प्रति 100 ग्राम फाइबर पाया जाता है। फाइबर मधुमेह से पीड़ित रोगियों में रक्त में शर्करा स्तर को नियंत्रित करता है। गाजर की पत्तियों में मौजूद फाइबर विशेष रूप से घुलनशील फाइबर जो आंत में शर्करा के अवशोषण को धीमा करता है, जिसके परिणाम स्वरूप रक्त में शर्करा का स्तर नियंत्रित होता है।

——— शेष पृष्ठ 5 की ———

आलू के प्रमुख नाशीजीव एवं उनका नियंत्रण

गृहों में रखा जाता है। संक्रमित कंदों के बीच के ऊत्तक गहरे धूसर रंग से लेकर थोड़े काले अथवा बैंगनी रंग के हो जाते हैं। बाद में प्रभावी ऊत्तक सूख कर अलग हो जाते है और कंद में गुहाएं बन जाती है। यह रोग छोटे कंदों की अपेक्षा बड़े कंदों में तेज़ी से फैलता है।

नियंत्रण : 1. गर्मियों में खेत की गहरी जुताई कर खुला छोड़ देना चाहिए, जिससे भूमि में दबी कीट अवस्था को नष्ट किया जा सके।

2. खेत में बेकार पड़े आलू के कंदों को खेत से बाहर निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए।

3. खेत के आस-पास खरपतवारों को नहीं पनपने देना चाहिए, समय रहते इनको नष्ट कर देना चाहिए।

4. फसल में नत्रजन उर्वरक की उचित मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए। बुवाई हेतु स्वस्थ एवं निरोगी कंदों का चयन करना चाहिए।

5. बुवाई हेतु स्वस्थ एवं निरोगी कंदों का चयन करना चाहिए।

6. उपयुक्त फसल-चक्र अपनाना तथा एक ही खेत में लगातार आलू की फसल नहीं उगानी चाहिए।

7. आलू की रोगरोधी किस्में जैसे कुफरी अलंकार, कुफरी सिन्दूरी, कुफरी जीवन आदि को उगाना चाहिए।

8. आलू की खुदाई शुष्क मौसम में करनी चाहिए, साथ ही खुदाई के समय स्वस्थ कंदों को छांटते रहना चाहिए।

9. खेत में पौधों के चारों ओर 10-15 सैंटीमीटर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए ताकि कंद संक्रमण से बचे रहें।

10. भंडारण के पूर्व कंदों को शुष्क कर देना चाहिए और उन्हें 3.5-4.5 डिग्री सैंटीग्रेड तापमान पर ठण्डे, हवादार एवं शुष्क गोदामों में भंडारित करना चाहिए।

11. हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु कीटों का संरक्षण करके इनका प्रयोग सफल बनाना चाहिए।

12. किसान भाई को खेत में कीट की निगरानी रखें तथा उचित समय पर उचित कीटनाशक का छिड़काव करें, इसके लिए खड़ी फसल में क्विनलफॉस 25 प्रतिशत ई.सी. अथवा क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. की 2.5 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के मान से छिड़काव करें, जिससे आलू के पतंगे को नष्ट किया जा सके। चूसक कीटों हेतु अन्तप्रवाही प्रकार के कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस.एल. की 0.33 मिलीलीटर अथवा एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत एस.पी. की 0.33 ग्राम मात्रा अथवा डायमिथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. या ऑक्सीडिमेटॉन मिथाइल 25 प्रतिशत ई.सी. की 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल से छिड़काव करें। आवश्यकता अनुसार छिड़काव दोहरायें।

13. कंद को भंडारित करना है, तब ध्यान रखें कि गोदाम में सूखी नीम या पत्तियों को गोदाम के तह में तथा ऊपर प्रयोग में लेनी चाहिए। गोदाम में रेत का प्रयोग कर आलू का भंडारण करना चाहिए, जिससे मादा अंडे नहीं दे सकें।

14. गोदाम में बीज के उद्देश्य से रखे आलू को मैलाथियान चूर्ण अथवा क्विनलफॉस अथवा मिथाइल पैराथियान चूर्ण की 1.5 किलोग्राम प्रति मीट्रिक टन के हिसाब से उपचारित करें।

15. झुलसा रोग निदान हेतु किसानों को मैंटालेजिकल 8 प्रतिशत मैंकोज़ेब 64 प्रतिशत की 2.5 ग्राम अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी के मान से छिड़काव करें। आवश्यकता अनुसार छिड़काव को दोहरायें।

16. स्वस्थ बीज को फफूंदनाशक से उपचारित करने के बाद की बुवाई करनी चाहिए।

सादगीपूर्ण जीवनशैली से प्रदूषण मुक्ति की राह

अवीजीत पाठक

दिल्ली में वायु प्रदूषण का गंभीर संकट नागरिकों के स्वास्थ्य व पारिस्थितिकी के लिए घातक बन चुका है। इसके लिए सुझाए जा रहे तकनीकी कृत्रिम समाधान पर्याप्त नहीं, ठोस उपाय कारगर होंगे। सबक यह है कि आधुनिकता की अंधी दौड़ और अति उपभोक्तावाद को छोड़कर हमें संयमपूर्ण जीवनशैली और जिम्मेदारी की सोच अपनानी होगी।

राष्ट्रीय राजधानी में वायु प्रदूषण की तीव्रता के बारे में पहले ही काफी कुछ कहा और लिखा जा चुका है। बारम्बार, हमें उस जहरीली हवा के हानिकारक परिणामों की याद दिलाई जाती रही है जिसमें हम सांस लेते हैं। जैसा कि एम्स के पूर्व निदेशक डॉ. रणदीप गुलेरिया कहते हैं, वायु प्रदूषण कोविड-19 से ज्यादा लोगों की जान ले रहा है। दरअसल,

उनके शब्दों में, वायु प्रदूषण के दीर्घकालिक प्रभाव खांसी और सांस फूलने से कहीं आगे तक जाते हैय यह दिल के दौरे, ब्रेन स्ट्रोक और यहां तक कि कैंसर जोखिम का एक बड़ा कारक है। फिर भी, ऐसा लगता है कि हम बुनियादी सवाल उठाने और इस संकट की जड़ तक पहुंचने के लिए तैयार नहीं। इसके बजाय, हम सरकार द्वारा सुझाए गए अस्थायी समाधानों से ही संतुष्ट रहना पसंद कर रहे हैं। एयर प्यूरीफायर खरीदेंय बाहर जाते समय एन95 मास्क का इस्तेमाल करेंय और तकनीकी चमत्कार- क्लाउड सीडिंग एवं कृत्रिम वर्षा - का इंतजार करें! दरअसल, किसी सार्वजनिक समस्या के ऐसे निजीकृत समाधानों से परे देखने, खुद से सवाल करने और उस वैश्विक नजरिये अथवा जीवन शैली के तरीकों पर सवाल उठाने के लिए साहस और राजनीतिक/नैतिक दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होती है, जिसे हमने सामान्य बना लिया है।

आइए, हम ईमानदारी से स्वीकार करें कि दिल्ली का वायु प्रदूषण, व्यापक जलवायु संकट और पारिस्थितिकी तंत्र पर बढ़ते हमलों से जुदा नहीं है। आधुनिकता के मूल मिजाज और प्रकृति पर मशीनी प्रभुत्व स्थापित करने की तर्कसंगतता मनाने पर विचार करें। 16वीं शताब्दी के दार्शनिक फ्रांसिस बेकन को याद करेंकृजिस तरह उन्होंने प्रकृति को मात्र संसाधन के रूप में देखा, और उस पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए प्रकृति पर जीत प्राप्त करने, उसे काबू करने और अपने हिसाब से घुमाने के लिए नव विज्ञान की वकालत की है। यह कहकर कि 'ज्ञान ही शक्ति है' -बेकन का यह सिद्धांत उस सोच को नई गति देता है जिसको लेकर आधुनिकता बहुत उत्साहित रहती है - अंतहीन तकनीकी-भौतिक प्रगति हेतु प्रकृति पर विजय पाने का कार्य। और फिर, आधुनिकता की सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप में तकनीकी-पूंजीवाद के निरंतर विकास के साथ, हम आर्थिक विकास और उपभोक्तावाद के सिद्धांत के प्रति तेजी से आदी होने लगे। कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे आस-पास की हर चीज, चाहे वह पेड़ हो, नदी हो, जंगल हो या पहाड़, अपना रहस्य और अर्थ खो बैठी है। इस मोहभंग भरी दुनिया में, प्रकृति हमारी बढ़ती जरूरतों और लालच को पूरा करने के लिए अपने 'उपयोग मूल्य' के साथ एक संसाधन मात्र बन गई है - ज्यादा बिजली, ज्यादा कारें, ज्यादा फर्नीचर, ज्यादा यात्राएं, ज्यादा कपड़े, ज्यादा उपभोग... हम सड़कें बनाने के लिए हजारों पेड़ों को नष्ट करने से नहीं हिचकिचातेय बांध बनाने और बिजली पैदा करने के लिए नदी के प्राकृतिक प्रवाह और लय को नष्ट कर रहे हैय हम उपभोक्तावादी पर्यटकों की जरूरतों की पूर्ति हेतु होटल और रिसॉर्ट बनाने के लिए नाजुक पहाड़ों को नष्ट करते हैं। इसके अलावा, चूंकि आधुनिकता के विमर्श में गति और गतिशीलता का पंथ अंतर्निहित है, इसलिए हमें ज्यादा कारों, ज्यादा ट्रेनों, ज्यादा हवाई जहाजों की जरूरत हैय और इसके वास्ते उपयोग होने वाले जीवाश्म ईंधन का निरंतर दोहन ज्यादा से ज्यादा कार्बन उत्सर्जन को बढ़ावा देता है। हम आधुनिकता व तकनीकी-पूंजीवाद के दुष्चक्र में फंसे हैं। जैसा कि समाजशास्त्री उलरिच बेक ने कहा है, 'अब हम एक 'जोखिम युक्त समाज' में जी रहे है।'

दिल्ली का वायु प्रदूषण आधुनिकता की त्रासदी का एक उदाहरण है। शहर में घूमते वक्त वाहनों की भरमार देखिए। जैसा कि दिल्ली के 2023 के आंकड़े बताते है, राजधानी में पंजीकृत वाहनों की कुल संख्या 1.2 करोड़ थी, जिनमें से 33.8 लाख निजी कारें थीं। शहर में जारी अंतहीन निर्माण कार्य को देखिए- कहीं कोई नया राजमार्ग, कोई नया फ्लाईओवर, कोई नया मेट्रो स्टेशन, या गगनचुंबी मंजिलों वाली कोई नई विशाल हाउसिंग सोसायटी बनती नजर आती है। इसे स्वीकार करें, दिल्ली का वायु प्रदूषण मुख्य रूप से पड़ोसी राज्यों में पराली जलाने के कारण नहीं है। इसकी बजाय, यह बड़े पैमाने के विकास, गति और उपभोग में अंतर्निहित जन्मजात अवगुण के कारण है। हम यह कैसे भूल सकते है कि वाहनों से निकलने वाला उत्सर्जन दिल्ली के वायु प्रदूषण में एक बड़ा योगदानकर्ता है, अध्ययनों से पता चलता है कि वार्षिक पीएम-2.5 प्रदूषण मानक के घनत्व में यह 10-30 प्रतिशत तक जिम्मेदार है, जो इसे खराब वायु गुणवत्ता में एक प्रमुख वजह बनाता है। इसी तरह, औद्योगिक गतिविधियों और बिजली संयंत्रों से उत्सर्जन, अपशिष्ट जलाने, भवन निर्माण कार्य और सड़क से उठती धूल शहर में गंभीर वायु प्रदूषण पैदा करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इतना ही नहीं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दिल्ली-एनसीआर में ऑफिस जाने वालों के लिए, जैसा कि एक अध्ययन बताता है, औसत एकतरफा यात्रा दूरी 22 किमी. है। वास्तव में, ये लंबी औसत यात्रा दूरी और अधिक यात्रा समय पीएम 2.5 और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसे प्रदूषकों के प्रमुख स्रोत हैं।

लेकिन, ये सवाल उठाना मुश्किल है। क्योंकि इसके लिए हमें खुद के अंदर झांकना होगा और अपनी अतिशयी-आधुनिकता भरी जीवन शैली पर सवाल उठाने पड़ेंगे। लेकिन यह करने की बजाय, हमारे लिए यह मानना आसान है कि अगर हम अपने बेडरूम में एयर प्यूरीफायर इस्तेमाल करेंगे, तो हम सुरक्षित हो जाएंगे - यह मानना आसान है कि अगर टेक्नो-साइंस नकली बारिश कर सकती है, तो चिंता करने की ज्यादा जरूरत नहीं। यह मानना आसान है कि अगर हम पेट्रोल-डीजल की बजाय इलेक्ट्रिक कारें अपना लें, तो समस्या हल हो जाएगी। गरीबों के मत्थे उनकी 'गैर-साफ सफाई' जीवन शैली का दोष मढ़ना आसान है। हालांकि, यह मानना मुश्किल है कि अमीर और पैसे वाले लोग, अपनी लग्जरी एसयूवी और स्पीड कारों, बार-बार हवाई यात्राओं और अति उपभोक्तावाद की वजह से कार्बन एमिशन में बहुत ज्यादा योगदान देते हैं। और यह भूलना आसान है कि इस प्रदूषण के बुरे स्वास्थ्य प्रभाव अक्सर उन गरीबों पर ज्यादा पड़ते हैं जो प्रदूषित इलाकों में रहते हैं।

सच तो यह है कि जब तक हम टेक्नो-कैपिटलिज्म के दायरे से आगे देखने की हिम्मत नहीं करेंगे, इस 'जोखिम कारक समाज' से कोई छुटकारा या आजादी नहीं है और वह नहीं अपनाते जिसे 'अव्यावहारिक' और 'यूटोपियन' (सब चलता है वाली प्रवृत्ति) माना जाता है। इसके लिए जीवन शैली और शहरी प्लानिंग के एक नए तरीके की जरूरत है। इसके लिए एक बदलाव की जरूरत है - तेज रफ्तार से धीमी गति की ओर, बड़े-बड़े एक्सप्रेस-वे से ऐसी सड़कों की तरफ जो पैदल चलने और साइकिल चलाने को प्रोत्साहन दें, प्राइवेट गाड़ियों से सार्वजनिक परिवहन की ओर, और दिखावटी उपभोक्तावाद से सादे-टिकाऊ जीवन की ओरय और झूठी जरूरतों की चाहत से उन चीजों की मांग की तरफ जो हमें और हमारे बच्चों को स्वस्थ रखे - बिना प्रदूषण वाला पीने का पानी, साफ हवा, पेड़, पानी के स्रोत, नीला आसमान और भरपूर हरी-भरी जगह।

अपनी प्राथमिकताएं चुनना हम पर निर्भर है, सरकार पर दबाव डालें, और तय करना कि हम किस तरह का 'विकास' चाहते हैं।

पातड़ां तहसील के दुगाल गांव के युवा किसान हरविंदर सिंह अपना रहे हैं खेतीबाड़ी में नवीनता

मोटे अनाज की जैविक खेती, एडवांस मिल रहे ऑर्डर; अब पंजाब एग्रो से मार्का लेने की तैयारी

आई.सी.एम.आर. कैंसर रजिस्ट्री प्रोग्राम के अनुसार पंजाब में वर्ष 2024 में कैंसर के 42,288 नए केस आए। ये पिछले साल से 7 प्रतिशत अधिक है। कई बरसों से कैंसर और अन्य बीमारियों की बढ़ती रफ्तार से सतर्क हुए पातड़ां तहसील के दुगाल गांव के 46 साल के किसान हरविंदर सिंह ने जैविक खेती अपनाई। वह मोटे अनाजों की खेती करते हैं।

हरविंदर सिंह एम.ए. पंजाबी और उर्दू-फारसी एवं ड्रामा में सर्टिफिकेट धारक हैं। उनकी पढ़ने में बहुत रुचि है। वह नए-नए विचारों के प्रति जागरूक रहते हैं। खेती में बदलाव लाने की कहानी उनके अपने घर से जुड़ी है। वह बताते हैं कि कुछ साल पहले उनकी माता को कैंसर हो गया। पिता के घुटने जाम (खराब) हो गए। इलाज के लिए बड़े-बड़े अस्पतालों में गया, तो सब बड़े डॉक्टरों ने खान-पान में सुधार की सलाह दी। घर आकर सोचा कि 40 एकड़ की खेती करते हैं। क्या अपने लिए कुछ अलग नहीं कर सकते? अगले दिन पंजाब खेतीबाड़ी यूनिवर्सिटी, लुधियाना में जाकर मोटे अनाजों की खासियतों और जैविक खेती की बारीकियों के बारे में प्रशिक्षण लिया।

उन्होंने बताया कि सबसे पहले 3 तरह की जल्दी की बुवाई की, जिससे 15 किलोग्राम हल्दी की पैदावार हुई। एक किलो हल्दी अपने पास रखकर 14 किलो हल्दी 350 रुपए प्रति किलो के हिसाब से बेच दी। हौसला बढ़ा तो फिर तिल से लेकर जवार तक सारे मोटे अनाजों की एक एकड़ में बुवाई कर दी। वह तिल, मूंग, माह, मौठ, कोधरा, मूंगफली, बाजरा, जवार, देसी मक्की, 3 तरह की हल्दी (आम, अंबा और काली) और बासमती (7 नंबर) की खेती करते हैं। पुरानी गेहूं की भी पैदावार लेते हैं। इन फसलों को बचाने के लिए पुराने तरीके अपनाते हैं। धतूरे, अश्वगंधा और नीम के पत्तों को आग लगाकर धुआं देते है।। खेती बहुत अच्छी हो रही है, मिट्टी और उनके परिवार की सेहत पहले से बेहतर है। लोग भी पहले ही आकर अपनी बुकिंग करवा दे रहे हैं। ऐसा ही रिसपांस रहा तो अगले साल इसे पूरी तरह कारोबार का रूप देंगे। असल में अगर कोई किसान लगातार 3 साल तक इस तरह मोटे अनाजों की जैविक खेती करता है, तो 3 साल बाद उसको पंजाब एग्रो की रजिस्ट्रेशन मिल जाती है। आवेदन पहले से कर रखा है। उन्हें उनके सारे प्रोडक्ट्स का मार्का मिल जाएगा। तब वह कमर्शियल बिक्री कर पाएंगे। अगले साल उन्हें 3 साल पूरे हो जाएंगे। मूंग और माह की फसल तैयार है। कटाई से पहले ये बिक भी गई। वह अपने उपभोग के लिए थोड़ी पैदावार रखकर बाकी अनाज बेच देंगे।

शेष पृष्ठ 7 की

फेरोमोन ट्रेप – कीट प्रबंधन की सरल, सस्ती पर्यावरण अनुकूल तकनीक

कीटनाशी दवाओं का प्रयोग कर सकते है, जिससे कीटनाशी के उपयोग में भी कमी लाई जा सकती है तथा खर्च को भी कम किया जा सकता है।

7. इस विधि के प्रयोग से अन्य कीट नियंत्रण विधियों की गुणवत्ता का भी भली-भांति मूल्यांकन किया जा सकता है।

8. फेरोमोन तकनीक एक सस्ती, पर्यावरण हितैषी तकनीक है और रासायनिक कीटनाशी दवाओं से काफी सस्ती भी है।

फेरोमोन तकनीक प्रयोग में आवश्यक सावधानियां :

1. फेरोमोन ल्यूर की उपयोगिता एक निश्चित समय के लिए ही होती है। अत: इनको 1 माह के पश्चात् बदलना चाहिए।

2. हमेशा फेरोमोन ल्यूर को ठंडे तथा सूखे स्थान पर ही रखना चाहिए।

3. प्रयोग के उपरांत ल्यूर के अवशेषों को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए।

4. फेरोमोन को खेत में लगाने के बाद इस बात को सुनिश्चित करते रहना चाहिए कि कीट एकत्र करने की थैली का मुंह बराबर खुला रहे और खाली स्थान बना रहे, जिससे अधिकाधिक कीटों को एकत्र करके उनका नाश किया जा सके।

फेरोमोन ट्रेप को हम गंध पाश के नाम से भी जानते हैं। फेरोमोन ट्रेप एक साधारण प्रकार का बना हुआ उपकरण है। इसमें कीप के आकार के मुख्य भाग पर लगे ढक्कन पर मादा कीट की गंध का ल्यूर या कैप्सूल लगाया जाता है, इससे नर कीट आकर्षित होते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक कीट का अलग-अलग ल्यूर होता है, जिस कीट की मादा का ल्यूर लगाया जाता है, उस कीट का नर इस नकली गंध के कारण आकर्षित होकर फेरोमोन ट्रेप की कीप में गिर जाता है, जो नीचे लगी हुई थैली में वापस बाहर निकल नहीं पाता है। लगातार रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रयोग के बाद भी हम कई फसलों के विभिन्न नाशीकीटों का सफलतापूर्वक प्रबंधन करने में सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहे है। इन स्थितियों में फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करके नाशीकीटों की स्थिति का आंकलन तथा अनुमान करने तथा नर पतंगों को पकड़ कर नष्ट करके इनका सफलतापूर्वक नियंत्रण किया जा सकता है।

फेरोमोन ट्रेप क्या है? : यह एक प्रकार का कार्बनिक पदार्थ है, जो किसी मादा कीट पतंगों द्वारा प्रकृति में उनके नर कीटों को समागमन क्रिया के लिए आकर्षित करने हेतु उत्सर्जित किया जाता है। अलग-अलग कीटों की मादाओं द्वारा उत्सर्जित विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों की पहचान करके इनका प्रयोगशालाओं में कृत्रिम रूप से संश्लेषण करके बड़े पैमाने पर उत्पादन करके, उपयोग किया जाता है। हमारे देश में अनेक प्रकार की संस्थान, प्राइवेट कंपनियां इस दिशा में काम कर रही है, जिसके द्वारा खेतों में विभिन्न कीटों की संघनता का आंकलन करने एवं उनको बड़े पैमाने पर पकड़ कर नष्ट करने के लिए फेरोमोन तकनीक का विकास किया गया है। इसमें से कुछ मुख्य कीटों, जिनके फेरोमोन ट्रेप आज बाज़ार में उपलब्ध हैं, की जानकारी निम्न अनुसार है :

स्पोडोप्टेरा लिटुरा : इस कीट को तंबाकू की सुंडी के नाम से जाना जाता है। इसका उपद्रव तंबाकू, गोभी, भिंडी आदि फसलों में होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में स्पोडो-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

हेलीयोथिस आर्मीजेरा : इस कीट को अमेरिकन बोलवार्म या चना फली बेधक आदि के नाम से जाना जाता है। इसका प्रकोप कपास, चना, अरहर, टमाटर, मटर आदि फसलों में बहुतायत से होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में हेली-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

पेक्टिनोफोरा गोसीपिलेला : इसे कपास की गुलाबी सुंडी भी कहते है। यह कीट आज हमारे देश में कपास का प्रमुख कीट है। इसकी उपस्थिति भिंडी की फसल में भी देखी जाती है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में पेक्टीन-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

इरियास प्रजाति : इसे कपास का गूलर बेधक या भिंडी के प्ररोह तथा फल बेधक के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रकोप कपास तथा भिंडी की फसल में देखा जाता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में ईरविट-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

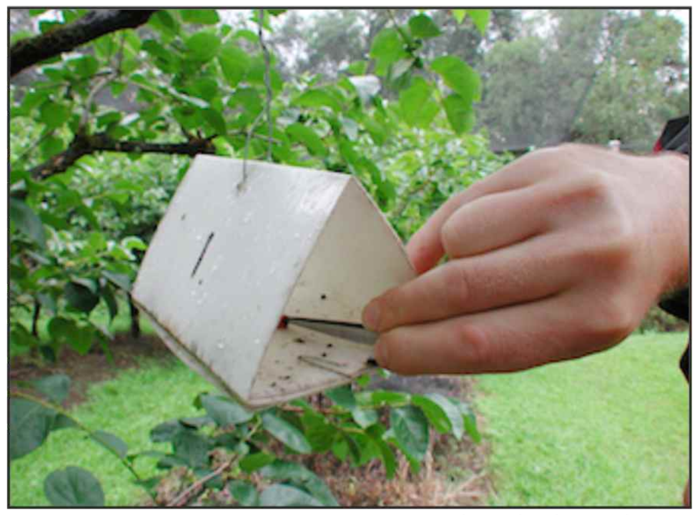

हीरक पृष्ठ शलभ (डायमंड बेक मोथ) : इस कीट का प्रकोप सरसों, गोभीवर्गीय सब्ज़ियों, मूली आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में डीबीएमल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

राईनोसोरस भृग : इस कीट का प्रकोप नारियल, खजूर, ताड़ आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में आरबील्यूर के नाम से उपलब्ध है।

काईलो इनफेसकेटुलस : इस कीट का प्रकोप गन्ने की फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में इएसबी-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

ल्यूसीनोडस ओर्बोनेलिस : इस कीट का प्रकोप बैंगन की फसलों पर होता है। इसको बैंगन का प्ररोह तथा फल बेधक के नाम से भी जाना जाता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में ल्यूसीन-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

सिर्कोफेगा इंसुर्लेटा : इस कीट का प्रकोप धान्य फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में सिर्पो-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

रेड पाम वीविल : इस कीट का प्रकोप नारियल, खजूर, ताड़ आदि फसलों पर होता है। इस कीट का फेरोमोन ल्यूर बाज़ार में आरपीडब्ल्यू-ल्यूर के नाम से उपलब्ध है।

फेरोमोन ट्रेप के उपयोग में ल्यूर (वायल/सेप्टा) तथा ट्रेप दोनों का प्रयोग किया जाता है। यहां पर ल्यूर का उपयोग नर पतंगों को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। ट्रेप के अंतर्गत ऊपर का एक एक्कन होता है, जो ल्यूर की धूप, बारिश, गर्मी से सुरक्षा करता है तथा एक छल्ला रहता है, जिसमें कीट एकत्र करने की थैली फंसाई जाती है। यह थैली कीटों को फंसाने और संग्रह करने के काम आती है।

फेरोमोन ट्रेप का उपयोग कैसे करें : खेतों में इन फेरोमोन ट्रेप को सहारा देने के लिए एक लकड़ी का डंडा ज़मीन में गाड़ना होता है, इस डंडे के सहारे छल्ले को बांध कर इसे लटका दिया जाता है तथा ऊपर के ढक्कन में बने स्थान पर ल्यूर को फंसा दिया जाता है और बाद में छल्लों में बने पैरों पर इसे कस दिया जाता है। कीट एकत्र करने की थैली को छल्लों में विधिवत रूप से लगा कर इसके निचले सिरे को लकड़ी के डंडे से सहारे एक छोर पर बांध दिया जाता है। फेरोमोन ट्रेप की ऊंचाई इस प्रकार से रखनी चाहिए कि ट्रेप का ऊपरी भाग फसल की ऊंचाई से 1-2 मीटर ऊपर रहे।

ट्रेप का निर्धारण तथा उसकी संघनता : प्रत्येक कीट के नर पतंगे को बड़े पैमाने पर एकत्रित करने के लिए सामान्यत: 5 से 8 ट्रेप प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होते हैं। यहां एक ट्रेप से दूसरे ट्रेप की दूरी 30 से 40 मीटर रखनी चाहिए। कीटों की संघनता का अनुमान लगाने के लिए एक ट्रेप प्रति 2 हैक्टेयर की दर से लगाना चाहिए। इस ट्रेप को खेत में लगा देने के उपरांत इसमें फंसे पतंगों की नियमित जांच करनी चाहिए तथा पकड़े गए पतंगों के आंकड़ों का रिकॉर्ड रखना चाहिए ताकि उनकी गतिविधियों पर निगरानी रखी जा सके। बड़े पैमाने पर कीटों को पकड़ कर उनको नष्ट करने हेतु जब इसका उपयोग किया जाता है, तब थैली में एकत्रित कीटों को नियमित तौर पर नष्ट करके थैली को समय-समय पर खाली करते रहना चाहिए, जिससे उनमें नए पतंगों के घुसने की जगह बन सके। इस विधि को अपनाने का फायदा यह है कि किसान अपने खेतों पर ही कीट की उपस्थिति तथा उसकी संघनता का आंकलन कर उसके अनुरूप प्रबंधन उपायों के विषय में निर्णय ले सकता है, जिसमें कीटनाशी रसायनों का प्रयोग भी शामिल है। प्राय: इसके कारण अनावश्यक रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रयोग में भी कमी की जा सकती है।

फेरोमोन तकनीक तथा ल्यूर प्रयोग की सीमाएं :

1. इसके उपयोग से कीटनाशी दवाओं के अनावश्यक प्रयोग में भी कमी की जा सकती है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण में कमी लाई जा सकती है तथा खेती खर्च को कम किया जा सकता है।

2. कीटनाशी रसायनों के कम उपयोग से वातावरण प्रदूषण में कमी लाई जा सकती है। फेरोमोन तकनीक सरल विष रहित तकनीक है, अत: सभी के लिए सुरक्षित है।

3. फेरोमोन तकनीक के उपयोग से कीटों के विस्तार को सीधे रोका जा सकता है। इस प्रकार से कीटों से होने वाले नुकसान को रोकने में मदद मिलती है, जिससे कृषि उत्पादन में स्वत: 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

4. फेरोमोन विषैले नहीं होते है तथा लक्ष्य विशेष के विरुद्ध ही काम करते है, इसलिए सभी के लिए सुरक्षित होता है।

5. ये जैविक कीट नियंत्रण हेतु उपयोगी प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परभक्षी तथा परजीवियों के लिए सुरक्षित है, अत: इसे हम समन्वित नाशीकीट प्रबंधन के एक घटक के रूप में भी प्रयोग कर सकते है।

6. किसान भाई, फेरोमोन ट्रेप की सहायता से कीटों की उपस्थिति तथा संख्या का भली-भांति अनुमान लगा सकते है तथा इसी के अनुरूप रासायनिक कीटनाशी दवाओं का प्रयोग कर सकते है, जिससे कीटनाशी के उपयोग में भी कमी लाई जा सकती है तथा खर्च को भी कम किया जा सकता है।

7. इस विधि के प्रयोग से अन्य कीट नियंत्रण विधियों की गुणवत्ता का भी भली-भांति मूल्यांकन किया जा सकता है।

8. फेरोमोन तकनीक एक सस्ती, पर्यावरण हितैषी तकनीक है और रासायनिक कीटनाशी दवाओं से काफी सस्ती भी है।

फेरोमोन तकनीक प्रयोग में आवश्यक सावधानियां :

1. फेरोमोन ल्यूर की उपयोगिता एक निश्चित समय के लिए ही होती है। अत: इनको 1 माह के पश्चात् बदलना चाहिए।
2. हमेशा फेरोमोन ल्यूर को ठंडे तथा सूखे स्थान पर ही रखना चाहिए।
3. प्रयोग के उपरांत ल्यूर के अवशेषों को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए।
4. फेरोमोन को खेत में लगाने के बाद इस बात को सुनिश्चित करते रहना चाहिए कि कीट एकत्र करने की थैली का मुंह बराबर खुला रहे और खाली स्थान बना रहे, जिससे अधिकाधिक कीटों को एकत्र करके उनका नाश किया जा सके।

दिल्ली के 15 प्रतिशत पानी में 'यूरेनियम'

दिल्ली का भूजल एक गंभीर स्वास्थ्य संकट से जूझ रहा है, जहां भारी धातुओं का प्रदूषण देश में सबसे अधिक दर्ज किया गया है। केंद्रीय भूजल बोर्ड (सी.जी. डब्ल्यू.बी.) की हालिया वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार राजधानी के भूजल में यूरेनियम, सीसा, नाइट्रेट, फ्लोराइड और लवणता से जुड़े मानक खतरनाक स्तर पर पाए गए हैं, जिससे बोरवेल और हैंड पंप के पानी पर निर्भर लोगों के स्वास्थ्य के लिए यह गंभीर जोखिम हो सकता है।

यूरेनियम स्वाभाविक रूप से पाया जाने वाला एक रेडियोधर्मी तत्व है। जल शक्ति मंत्रालय के अंतर्गत जारी केंद्रीय भूजल बोर्ड (सीजीडब्ल्यूबी) की वार्षिक भूजल गुणवत्ता रिपोर्ट 2025 में बताया गया है कि एकत्र किए गए कुल नमूनों में से 13 से 15 प्रतिशत में यूरेनियम संदूषण पाया गया। यह रिपोर्ट 2024 में देशभर से एकत्र किए गए लगभग 15,000 नमूनों पर आधारित है।

रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि दिल्ली के 86 निगरानी स्थलों में लिए गए कई नमूनों में विभिन्न मानक भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) की पेयजल सीमा से अधिक पाए गए। वर्ष 2024 में भूजल गुणवत्ता के नमूने 5,368 चयनित ट्रेंड स्टेशनों से मानसून से पहले और मानसून के बाद के मौसम में एकत्र किए गए, ताकि

मौसमी पुनर्भरण का भूजल गुणवत्ता पर प्रभाव आंका जा सके। नमूना संग्रहण और विश्लेषण के लिए एपीएचए 2012 (स्टैंडर्ड मेथड्स फॉर द एग्जामिनेशन ऑफ वाटर एंड वेस्ट वॉटर, अमेरिकन पब्लिक हेल्थ एसोसिएशन) में दिए गए मानक तरीकों का उपयोग किया गया।

इस रिपोर्ट का उद्देश्य पेयजल और कृषि उपयोग हेतु भूजल में अकार्बनिक जल गुणवत्ता मानकों के व्यापक परीक्षण करना है। देशभर में भूजल गुणवत्ता में बहुत अंतर पाया गया। अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मेघालय और जम्मू-कश्मीर जैसे राज्यों में शत-प्रतिशत नमूने बीआईएस मानकों पर खरे उतरे हैं।

इसके विपरीत राजस्थान, हरियाणा और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में व्यापक प्रदूषण पाया गया। दिलचस्प बात यह है कि मानसून के दौरान पानी की गुणवत्ता में कुछ सुधार देखा गया, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां विद्युत चालकता (ईसी) और फ्लोराइड उच्च था। मानसून के बाद कुछ क्षेत्रों में ईसी और फ्लोराइड स्तर में मामूली कमी दर्ज की गई, जिससे स्पष्ट होता है कि मानसूनी पुनर्भरण लवणों के घुलनशील होने के कारण जल गुणवत्ता में अस्थायी सुधार ला सकता है।

मानकों के अनुसार 30 पीपीबी की अधिकतम अनुमेय मात्रा से अधिक यूरेनियम घनत्व वाला पानी पीने के लिए सुरक्षित नहीं माना जाता, क्योंकि इसका निरंतर सेवन आंतरिक अंगों को क्षति पहुंचा सकता है। पीने के पानी में बढ़ा हुआ यूरेनियम स्तर कई महामारी-विज्ञान अध्ययनों में मूत्र मार्ग कैंसर और गुर्दे की विषाक्तता से जुड़ा पाया गया है।

एक हालिया अध्ययन में पाया गया कि पीने के पानी में यूरेनियम के स्तर और हड्डियों में यूरेनियम की मात्रा के बीच मजबूत संबंध है, जिससे संकेत मिलता है कि हड्डियां यूरेनियम के सेवन का अच्छा संकेतक हो सकती हैं। ऐसे अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर यूरेनियम के हानिकारक प्रभावों का और मूल्यांकन जरूरी है, विशेषकर उन देशों में जहां पेयजल में यूरेनियम का स्तर अधिक पाया गया है।

भूजल में उच्च यूरेनियम स्तर स्थानीय भूगर्भीय संरचना, मानव-जनित गतिविधियों, शहरीकरण और कृषि में बड़े पैमाने पर फॉस्फेट खाद के उपयोग के कारण हो सकता है। अध्ययनों में पाया गया है कि फॉस्फेट उर्वरकों में एक मिलीग्राम प्रति किलोग्राम से 68.5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम तक यूरेनियम हो सकता है। इस प्रकार, फॉस्फेट चट्टानों से बने उर्वरक कृषि इलाकों में भूजल में यूरेनियम बढ़ा सकते हैं।

यूरेनियम संदूषण के लिए कई रोकथाम उपाय उपलब्ध हैं। इसमें अवशोषण, कोएगुलेशन, एक्सट्रैक्शन, रिवर्स ऑस्मोसिस और वाष्पीकरण जैसी उपचार तकनीकें शामिल हैं। सही तकनीक का चयन लागत, दक्षता और स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कई मामलों में संयुक्त या आवश्यकता-आधारित तकनीकों का उपयोग सबसे प्रभावी पाया गया है।

लौह और मैंगनीज को नियंत्रित करने के लिए एरेशन, निस्पंदन, लौह अथवा मैंगनीज निष्कासन संयंत्रों का उपयोग और रासायनिक ऑक्सीकरण शामिल हैं। छोटे स्तर या घरेलू उपयोग के लिए रिवर्स ऑस्मोसिस और विशेष मीडिया फिल्टर उपयुक्त हैं। सीसा संदूषण से निपटने के लिए प्रमुख कदमों में निस्पंदन प्रणालियों (सक्रिय कार्बन, आरओ या आयन विनिमय), औद्योगिक अपशिष्ट पर कड़ी निगरानी, सार्वजनिक भवनों में सीसा परीक्षण और हाइड्रोजियोकेमिकल मैपिंग शामिल हैं।

साझा सहमति में ही जलवायु परिवर्तन का विकल्प

कॉप-30 सम्मेलन ने जलवायु संकट के समाधान में साझा सहमति का संकेत दिया, लेकिन जीवाश्म ईंधन, वित्तीय सहायता और प्रभावी कार्रवाई पर मतभेद बने रहे, जो समाधान की राह को जटिल बनाते हैं।

विगत दिनों ब्राजील के बेलेम में संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन कॉप-30 सम्पन्न हो गया। सम्मेलन के अंत में, जैसी पहले से उम्मीद थी, सभी देशों का मिलकर काम करने का संकल्प लेना संभव नहीं दिखा। सम्मेलन के आखिरी दिन जीवाश्म ईंधन को चरणबद्ध तरीके से खत्म करने को लेकर जो खींचतान हुई, वह दुनिया को आश्वस्त करने की दिशा में विश्वसनीय नहीं प्रतीत हुई। यही नहीं, सम्मेलन में अनिश्चितता का आलम यह रहा कि जीवाश्म ईंधन से जुड़ी वैश्विक योजना का उल्लेख पहले ड्राफ्ट में किया गया था, जिसे बाद में संशोधित ड्राफ्ट से हटा दिया गया। इससे यह साफ हो गया कि जीवाश्म ईंधन का मुद्दा आने वाले दौर में भी अनसुलझा ही रहेगा। जैसा कि 11 नवम्बर को सम्मेलन की शुरुआत में यह उम्मीद बंधी थी कि सम्मेलन में भाग लेने वाले दुनियाभर के देश ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ किसी ठोस नतीजे पर पहुंच जाएंगे, आखिरकार सम्मेलन जिस मुकाम पर पहुंचा, उसने साबित कर दिया कि वैश्विक तापमान वृद्धि को नियंत्रित करने के मामले में सम्मेलन कुछ भी करने में नाकाम रहा।

इसके बावजूद सम्मेलन में हुई जलवायु वार्ता को कई मायनों में अभूतपूर्व कहा जा रहा है। इसका अहम कारण यह रहा कि सम्मेलन में मौजूद दुनियाभर के 194 देशों ने तमाम तरह के मतभेदों, तनावों और अमेरिका की गैर-मौजूदगी के बावजूद एक ऐसे पैकेज पर सहमति दर्ज की। गौरतलब है कि जलवायु मुद्दे पर इसे बेलेम पॉलिटिकल पैकेज की संज्ञा दी जा रही है। उम्मीद है कि यह पैकेज वैश्विक तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने की राह आसान करेगा। दरअसल, दुनियाभर के 194 देशों की जलवायु मुद्दे पर एकमत से सहमति यह जाहिर करती है कि अब जलवायु मुद्दा वैश्विक नेतृत्व का सवाल नहीं रह गया है और न ही यह नैतिक मुद्दा है, बल्कि अब यह आर्थिक सुरक्षा और विकास का भी सवाल बन चुका है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज दुनिया बेहद गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है। इसके बावजूद, अधिकांश देशों ने वैश्विक तापमान वृद्धि को दो डिग्री सेल्सियस के नीचे रखने और 1.5 डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को लेकर अपेक्षित गंभीरता नहीं दिखाई है। तेजी से बढ़ता हुआ कार्बन उत्सर्जन और तापमान में वृद्धि मानव अस्तित्व के लिए गंभीर खतरे की घंटी बनते जा रहे हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण विकसित देशों का अपनी कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के प्रति संजीदगी से काम न करना है। जबकि इन देशों को अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए निर्धारित समय सीमा से पहले 'नेट जीरो' लक्ष्य हासिल करने की दिशा में कदम उठाना चाहिए था, क्योंकि इन देशों का कार्बन उत्सर्जन में सबसे बड़ा

योगदान है।

यह जानते हुए कि अब हमारे पास समय बहुत कम बचा है और पेरिस समझौते को प्रभावी रूप से लागू करना अत्यंत आवश्यक है, मुख्य रूप से तीन सवालों पर विचार करना जरूरी है। पहले, दुनियाभर के देशों द्वारा जलवायु कार्रवाई को कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है। दूसरे, तकनीक, राहत राशि और वित्तीय सहायता उन देशों तक कैसे पहुंचाई जा सकती है, जो इससे सबसे अधिक प्रभावित हैं और जिन्हें इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। तीसरे, जलवायु कार्रवाई को समग्र और समावेशी तरीके से कैसे लागू किया जा सकता है। इन तीन प्रश्नों के मध्य ही समग्र जलवायु समाधान की दिशा तलाशनी होगी।

मौजूदा देशों ने यह स्वीकार किया कि विकासशील देशों के हितों को प्राथमिकता देना अब समय की आवश्यकता है। खासकर, जलवायु परिवर्तन से प्रभावित गरीब देशों के लिए फंड के आवंटन को लेकर सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि इन देशों को मौसम के कहर से निपटने के लिए तीन गुना अधिक वित्तीय सहायता दी जाएगी। इसके अलावा, विकसित देशों से यह अपील की गई कि वे 2035 तक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए गरीब देशों को दी जाने वाली राशि को कम से कम तीन गुना बढ़ा दें।

हालांकि, अधिकतर देशों ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एकजुट होने की कोशिश की, लेकिन अमीर और विकासशील देशों, साथ ही तेल, गैस और कोयला उद्योग से जुड़े देशों के बीच मतभेद बने रहे। ये मतभेद उनके पुराने दृष्टिकोण को दर्शाते हैं, और यह साफ दिखता है कि इन मुद्दों पर वे अभी भी अपनी स्थिति से पूरी तरह अडिग हैं। इसके अलावा, जंगलों की सुरक्षा जैसे अहम मुद्दे पर आम सहमति न बन पाने के कारण यह भी अनसुलझा ही रह गया।

भारत का यह दृढ़ मत रहा है कि विकसित देशों को तय अवधि से पहले 'नेट जीरो' लक्ष्य तक पहुंचना चाहिए। उनको भारत से सबक लेना चाहिए जो अपने विकास कार्यक्रम और पर्यावरण संरक्षण पहल को साथ-साथ आगे बढ़ा रहा है। इसी का परिणाम है कि भारत 2070 की समय सीमा से पहले ही नेट जीरो का लक्ष्य हासिल कर लेगा। भारत ने सम्मेलन को आश्वस्त किया कि वह संशोधित एनडीसी साल 2035 तक समय पर घोषित कर देगा। हकीकत यह है कि जलवायु संकट बढ़ाने में जीवाश्म ईंधन कोयला, गैस और तेल अभी भी सबसे बड़े जिम्मेदार हैं और जैसा कि आशा थी कि सम्मेलन में जीवाश्म ईंधन की मजबूत लॉबी जीवाश्म ईंधन के इस्तेमाल को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने के रोडमैप जारी होने में अड़ंगा लगाएगी और वह अंततः अपने मकसद में कामयाब भी रही।

बेलेम से यह साफ संकेत दिया गया कि दुनिया की ऊर्जा की कहानी अब पहले जैसी नहीं रही, वह अब बदल रही है। कुल मिलाकर बेलेम से निकली हवा ने साफ कर दिया है कि दुनिया भले पहले से कहीं ज्यादा विभाजित है, लेकिन जलवायु कार्रवाई पर बनी सहमति यह संकेत देती है कि साझा संकट साझा समाधान चाहता।

ज्ञानेन्द्रा रावत

वायु प्रदूषण संकट पर सुप्रीम कोर्ट का तर्क

पराली तो कोविड काल में भी जली मगर आसमान साफ था

* अन्य कारकों को नियंत्रित करने के उपायों पर मांगी रिपोर्ट

* कहा - सर्दियों में केवल रस्मी सुनवाई नहीं, नियमित निगरानी की जरूरत

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि दिल्ली-एनसीआर में वायु प्रदूषण के मुद्दे पर सुनवाई को केवल सर्दियों के महीनों में 'रस्मी सुनवाई' के तौर पर नहीं देखा जा सकता। इस समस्या के अल्पकालिक और दीर्घकालिक समाधान खोजने के लिए महीने में दो बार सुनवाई की जाएगी। सी.जे.आई. सूर्यकांत और जस्टिस जॉयमाल्या बागची की पीठ ने सामान्य विमर्श में एक अहम बदलाव करते हुए कहा, 'पराली जलाने का मुद्दा अनावश्यक रूप से राजनीतिक मुद्दा या अहं का मुद्दा नहीं बनना चाहिए।'

सीजेआई सूर्यकांत ने दिल्ली-एनसीआर में वायु प्रदूषण के लिए पराली जलाने को मुख्य कारण बताए जाने पर सवाल उठाते हुए कहा कि कोविड काल में लॉकडाउन के दौरान भी पराली जलाई जा रही थी, फिर भी लोगों को साफ नीला आसमान क्यों दिखाई दे रहा था? उन्होंने कहा कि हम अन्य कारकों को नियंत्रित करने के लिए किए गये उपायों पर एक सप्ताह के भीतर रिपोर्ट चाहते हैं। सीजेआई ने कहा कि हम पराली जलाने पर टिप्पणी नहीं करना चाहते, क्योंकि इसका बोझ उन लोगों (किसानों) पर डालना गलत है, जिनका इस न्यायालय में बहुत कम प्रतिनिधित्व है। सीजेआई ने देश में अनियोजित शहरी विकास और बढ़ती महत्वाकांक्षी आबादी का उल्लेख करते हुए कहा कि देश का कोई भी शहर यह सोचकर विकसित नहीं किया गया था कि प्रत्येक घर में कई कारें होंगी। सीजेआई ने तात्कालिक और दीर्घकालिक उपायों में स्पष्टता की मांग करते हुए केंद्र से वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीएक्यूएम), केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) और अन्य के विशिष्ट कदमों के बारे में बताने को कहा। शीर्ष अदालत ने इसी के साथ मामले की अगली सुनवाई के लिए 10 दिसंबर की तारीख तय की।

सरकार ने कहा – पराली जलाने के मामलों में 90 प्रतिशत कमी

सरकार ने संसद को बताया कि पंजाब और हरियाणा में 2022 की तुलना में 2025 में खेतों में पराली जलाने की लगभग 90 प्रतिशत कम घटनाएं दर्ज की गईं। कांग्रेस सांसद चरणजीत सिंह चन्नी के एक प्रश्न के लिखित उत्तर में पर्यावरण मंत्री भूपेन्द्र यादव ने यह जानकारी दी। उन्होंने यह भी कहा कि दिल्ली ने 2020 के कोविड लॉकडाउन वाले समय को छोड़कर, 2018 के बाद से जनवरी-नवंबर के बीच अपना सबसे कम औसत वायु गुणवत्ता सूचकांक दर्ज किया।

दिल्ली की वायु गुणवत्ता फिर 'बहुत खराब' श्रेणी में

राष्ट्रीय राजधानी में वायु गुणवत्ता सोमवार को एक बार फिर 'बेहद खराब' श्रेणी में पहुंच गई और इस दौरान समग्र वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) 304 दर्ज किया गया। लगातार 24 दिनों तक 'बेहद खराब' और अक्सर 'गंभीर' श्रेणी के करीब रहने के बाद पिछले रविवार को दिल्ली में वायु गुणवत्ता में मामूली सुधार हुआ था और तब एक्यूआई 279 दर्ज किया गया था जो 'खराब' की श्रेणी में आता है।

किसानों के हित में जारी

बीजोपचार

अच्छी फसलों का मूल आधार

बीजोपचार के लाभ

- ★ अधिक अंकुरण
- ★ अधिक प्रबल पौधे
- ★ आरंभिक बिमारियों का प्रभावी नियंत्रण
- ★ स्वस्थ पौधों की संख्या ज्यादा

देश के सभी किसान, पढ़ें होकर होशियार

अच्छी पैदावार तभी होगी, जब बीजों का हो सही उपचार